विवेक शिखा

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१८ फरवरी—१९९९ अंक—२
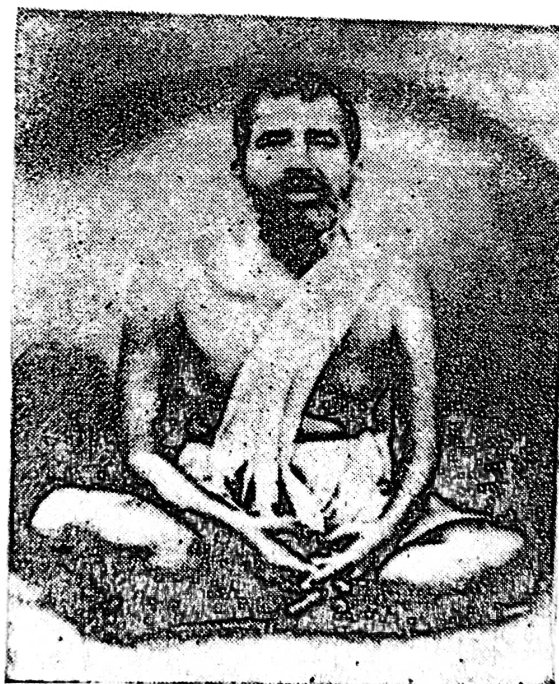
रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, बड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजीभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एस० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्पलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चोपड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची—(बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलांग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, औंधी (म० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र०)
१९४. स्वामी विरजानन्द, रा.कृ.मि. नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पहडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक विहार (दिल्ली)
१९७. डॉ० अखिलेश अग्रवाल—रुड़की, (उ० प्र०)
१९८. श्री अनिल कु० पूनम चन्द जैन—नागपुर (महा०)
१९९. डॉ० शीला जैन—बीकानेर (राजस्थान)
२००. श्री डी० एन० देशमुख—चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)
२०१. श्री योगेश कुमार थलिया—नवलगढ़ (राजस्थान)
२०२. रामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम—अम्बिकापुर (म.प्र.)
२०३. श्री ओन भक्त बुदाथोपी—डाँग (नेपाल)
२०४. श्री ए० डी० भट्टाचार्य—भद्रकाली (प० बं०)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो ।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की हिन्दी मासिकी

वर्ष—१८ फरवरी—१९९९ अंक—२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

सम्पादक :

डा० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :

ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :

विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	७०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें ।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

□ साधक का बल क्या है ? साधक ईश्वर की सन्तान है, बच्चों की तरह रोना ही उसका बल है। माँ जिस प्रकार बच्चे को रोते, मचलते देखकर उसका हठ पूरा करती है, उसी प्रकार भगवान भी साधक को व्याकुल होकर रोते देख उसकी प्रार्थना पूरी करते हैं ।

□ हृदय में ईश्वर के आगमन का लक्षण क्या है ? जिस प्रकार उषा की लाली सूर्य के उदित होने की सूचना देती है, उसी प्रकार निःस्वार्थता तथा सज्जनता ईश्वर के आगमन की सूचना देती है ।

□ यह निश्चित जानो कि जिस स्थान में अनेक युगों से अनेक लोग ईश्वरदर्शन के उद्देश्य से जप-तप, ध्यान धारणा, प्रार्थना-उपासना आदि करते आए हैं, वहाँ भगवान का विशेष प्रकाश है। इसीलिए ऐसे स्थान में मनुष्य को सहज ही में ईश्वरीय भाव का उद्दीपन तथा ईश्वर के दर्शन होते हैं।··· ईश्वर के सर्वत्र समान रूप से विराजमान होते हुए भी इन स्थानों में उनका विशेष प्रकाश होता है। जैसे जमीन को खोदने पर सभी जगह पानी मिल सकता है, परन्तु जहाँ कुआँ, तालाब या झील हो वहाँ पानी के लिए जमीन खोदना नहीं पड़ता—जब चाहो तब तुरन्त पानी मिल जाता है ।

□ साधुसंग मानो चावल का धोया हुआ जल है। किसी को अत्यधिक नशा चढ़ा हो तो उसे चावल का धोया हुआ पानी पिला देने से नशा उतर जाता है। उसी प्रकार साधुसंग संसार में कामना-वासनारूपी मद पीकर जो मत्त हुए हैं उनका नशा उतार देता है ।

□ जिसकी हड्डियाँ निकली हुई हों, जिसकी आँख भीतर धँसी हुई हों या जो काना या ऐंचाताना हो, उसे आसानी से विश्वास नहीं होता ।

भजन

गौड़ सारंग-त्रिताली

भव-भय-भंजन, पुरुष निरंजन, रति-पति-भंजनकारी।
यति-जन-रंजन, मनोमद खंडन, जय भव-बन्धन-हारी ॥
जय जन-पालक, सुरदल-नायक, जय-जय विश्व विधाता।
चिर शुभ साधक, मति-मल-पावक, जय चित-संशय त्राता ॥
सुर-नर वन्दन, विजर बिबन्दन, चित-मन-नन्दनकारी।
रिपु-चय मंथन, जय भवतारण, स्थल-जल-भूधर-धारी ॥
शम-दम - मण्डन, अभय - निकंदन, जय-जय-मंगलदाता।
जय सुख-सागर, नटबर नागर, जय शरणागत-पाता ॥
भ्रम-तम-भास्कर, जय परमेश्वर, सुखकर-सुन्दर-भाषी।
अचल सनातन, जय भव-पावन, जय विजयी अविनाशी ॥
भक्त विमोहन, वरतनु-धारण, जय हरिकीर्तन-भोला।
गद्-गद्-भाषण, चित-मन-तोषण, ढल-ढल-नर्तन लीला ॥
मति-गति बर्द्धन, कलि-बल-मर्दन, विषय विराग प्रसारी।
जड़-चित-चेतक, भव-जल, भेलक, जय नर-मानसचारी ॥
जय पुरुषोत्तम, अनुपम संयम, जय-जय अन्तरयामी।
खरतर-साधन, नर-दुःख-वारण, जय रामकृष्ण नमामि ॥

भावार्थ—भव भय को दूर करनेवाले, निरंजन पुरुष, काम को दमन करने वाले, साधु सन्तों को आनन्द देनेवाले, मन के (अहंकारादि) मद का खण्डन करने वाले, भव बंधन को दूर करनेवाले, हे रामकृष्ण, तुम्हारी जय हो। जन के रक्षक, देवताओं के स्वामी, विश्वविधाता, तुम्हारी जय हो। मंगलदाता, बुद्धि की मलिनता को विशुद्ध और चित्त के संशयों को दूर करनेवाले, हे रामकृष्ण, तुम्हारी जय हो।

देवता और मनुष्य जिनकी वन्दना करते हैं, जो अजर, बन्धन रहित और लोगों के मन को आनन्द देनेवाले हैं, जो शत्रु समूह (काम क्रोध आदि) का मन्थन करने वाले, संसार-समुद्र को पार करानेवाले, स्थल, जल और आकाश को धारण करनेवाले हैं, हे रामकृष्ण तुम्हारी जय हो। शम दम युक्त, अभय के धाम, मंगलों के दायक, हे रामकृष्ण, तुम्हारी जय हो। सुख के सागर, नटबर नागर, शरणागत के पालक, हे रामकृष्ण तुम्हारी जय हो!

भ्रमरूपी अन्धकार को मिटाने के लिए तुम सूर्य हो, सुखप्रद सुमधुरभाषी हो, हे परमेश्वर तुम्हारी जय हो। अचल, सनातन, संसार को पवित्र करनेवाले, विजयी, अविनाशी, हे रामकृष्ण तुम्हारी जय हो। भक्त को मुग्ध करनेवाले, श्रेष्ठ शरीरधारी, हरिकीर्तन में उन्मत्त होनेवाले, तुम्हारी जय हो। तुम्हारे गद्-गद् भाषण और मनोहर नृत्य से भक्तों के चित और मन सन्तुष्ट होते हैं।

मन की आध्यात्मिक गति बढ़ानेवाले, कलिमल का मर्दन और विषयों के प्रति वैराग्य दृढ़ करनेवाले, जड़ मन को चैतन्य करनेवाले, संसार जल का शोषण करनेवाले, मनुष्य के मन में विचरण करनेवाले, हे रामकृष्ण, तुम्हारी जय हो! हे पुरुषोत्तम, अनुपम संयमी, तुम्हारी जय हो, हे अन्तर्यामी तुम्हारी जय हो! तीव्र साधना करनेवाले, नर के दुःख दूर करनेवाले, हे रामकृष्ण तुम्हारी जय हो, तुम्हें प्रणाम हैं!

सम्पादकीय सम्बोधन

तदपि कहें बिनु रहा न कोई

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

भगवान श्रीरामकृष्ण देव के चारित्रिक ऐश्वर्य का, बहुआयामी जीवन का, अनन्त विभूति का वर्णन करना मुझ जैसे अति सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन ही नहीं, परम दुष्कर है। कहाँ उनका अनन्त भावमय स्वरूप और कहाँ मेरी सीमित दृष्टि ! कहाँ उनका असीम आकाश-सा व्यापक और गहन सागर-सा अतल व्यक्तित्व और कहाँ मेरी लघुता ! क्या बौने हाथ से हिमालय के उत्तुंग शिखर का स्पर्श किया जा सकता है ? क्या हल्का गोता लगाकर सागर की गहराई मापी जा सकती है ? इसलिए मैं एक संकोच का अनुभव करता हूँ, एक कठिनाई का बोध करता हूँ।

कुछ ऐसी ही कठिनाई का अनुभव गोस्वामी तुलसीदास जैसे महान कवि को भगवान श्रीराम के चरित गान के समय हुआ था। वे महान् कवि थे। फिर भी वे कहते हैं—

कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा॥
जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥
(बाल कांड ११/ -६)

अर्थात् कहाँ तो श्रीरघुनाथ जी के अपार चरित्र, कहाँ संसार में आसक्त मेरी बुद्धि ! जिस हवा से सुमेरु जैसे पहाड़ उड़ जाते हैं, कहिये तो, उसके सामने रुई किस गिनती में है ! श्रीराम की असीम प्रभुता को समझकर कथा रचने में मेरा मन बहुत हिचकता है।

फिर भी गोस्वामी जी आगे कहते हैं—

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहें बिनु रहा न कोई॥

यानि 'यद्यपि प्रभु श्रीरामचन्द्र जी की प्रभुता को सब ऐसी (अकथनीय) ही जानते हैं तथापि कहे बिना कोई नहीं रहा।' इसका कारण क्या है ? तुलसी दास जी कहते हैं—वेद ने इसका कारण यह बताया है कि भजन का प्रभाव कई प्रकार से बताया गया है। यानि भगवान् की महिमा का पूरा वर्णण तो कोई कर नहीं सकता, परन्तु जिससे जितना बन पड़े उतना भगवान् का गुणगान करना चाहिए। क्योंकि थोड़ा-सा भी भगवान् का भजन मनुष्य को सहज ही भव-सागर से तार देता है। आगे वे कहते हैं— जो प्रभु एक हैं, जिनकी कोई इच्छा नहीं है, जिनका कोई रूप और नाम नहीं है, जो अजन्मा, सच्चिदानन्द और परमधाम हैं और जो सब में व्यापक एवं विश्वरूप हैं, उन्हीं भगवान् ने

दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकार की लीला की है। वह लीला केवल भक्तों के हित के लिए ही है, क्योंकि भगवान् परम कृपालु हैं और शरणागत के बड़े प्रेमी हैं। जिनकी भक्तों पर बड़ी ममता और कृपा है, जिन्होंने एक बार जिस पर कृपा कर दी, उस पर फिर कभी क्रोध नहीं किया। इस क्रम को बढ़ाते हुए गोस्वामी जी कहते हैं—

बुध बरनहिं हरि जस अस जानी। करहि पुनीत सुफल निज बानी।
तेहि बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहउँ नाइ राम पद माथा॥

अर्थात् यही समझकर बुद्धिमान लोग उन श्री हरि का यश वर्णन करके अपनी वाणी को पवित्र और सफल बनाते हैं। उसी बल से (महिमा का यथार्थ वर्णन नहीं, परन्तु महान् फल देनेवाला भजन समझ कर भगवत्कृपा के बल पर ही) मैं श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में सिर नवाकर श्रीरघुनाथ जी के गुणों की कथा कहूँगा।

मेरा भी यही बल है। श्रीरामकृष्ण का भी चरित्र अपार है। श्रीरामकृष्ण भी "एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा" हैं। वे भी कृपा सिन्धु हैं। उन्होंने लोक-हित के लिए ही शरीर धारण किया और नरेन्द्र (स्वीमी विवेकानन्द) आदि भक्तों पर अशेष कृपा की एव कभी उन पर कोध नहीं किया। उन्होंने लोगों को ईश्वर-साक्षात्कार करने का सम्बल प्रदान किया। श्रीरामकृष्ण की महिमा का वर्णन करते हुए महात्मा गाँधी कहते हैं—श्रीरामकृष्ण की जीवन कथा धर्म को व्यवहार में लाने की कथा है। उनका जीवन हमें ईश्वर को आमने-सामने देखने की क्षमता प्रदान करता है।"

जोसेफ कैम्पबेल का कथन है कि श्रीरामकृष्ण ने स्वर्ग के दरबाजे को खोल दिया और ईश्वरीय आनन्द का निर्झर बहा दिया (Sri Ramakrishna cut the hinges of the heavens and released the fountains of divine bliss)

रोम्या रोलाँ कहते हैं—The Man (Ramakrishna) was the consummation of two thousand years of the spiritual life of three hundred million people. अर्थात् श्रीरामकृष्ण तीस करोड़ लोगों के दो हजार वर्षों के आध्यात्मिक जीवन की निष्पत्ति थे।

महर्षि अरविन्द ने उन्हें आध्यात्मिक अनुभूति का चरमोत्कर्ष—The acme of spiritual experience—कहा।

थॉमस मर्टन का मंतव्य है—"You have to experience duality for a long time until you see it's not there. In this respect I am a Hindu. Ramakrishna has the solution." जब तक आपको अद्वैत का ज्ञान नहीं होता, एक लम्बे अर्से तक आपको द्वैत का अनुभव करना होगा। इस अर्थ में मैं एक हिन्दू हूँ। श्रीरामकृष्ण के पास समाधान है।

वस्तुत: जिस प्रकार हिमगिरि के उत्तुंग शिखर से पिघल कर निकलनेवाली हिम नदी गंगा का रूप धारण कर मैदानी क्षेत्र में हजारों मीलों तक बहती हुई करोड़ों व्यक्तियों को अपने जीवनदायी जल से परितृप्त करती रहती है उसी प्रकार अपने जीवन के बहुलांश में समाधि के शीर्ष शिखर पर

अधिष्ठित रहनेवाले भगवान् श्रीरामकृष्ण भी मनुष्य के कष्ट को दूर करने के लिए करुणाभिभूत हो मानव के रूप में अवतरित हुए थे। उन्होंने अपनी जीवन-लीलाओं, आदर्शों एवं सन्देशों-उपदेशों के माध्यम से समग्र विश्व के मानव-प्राणी में ईश्वरीय चेतना जगाने की कृपा की, उसे अपनी दिव्यता का बोध करने की प्रेरणा दी और धर्म की संकीर्ण दीवारों के पार अध्यात्म के आलोकमय पथ पर विचरण करने का सुगम मंत्र दिया। इन सब का मैं कैसे वर्णन कर सकता हूँ! तथापि मैं आज के सन्दर्भ में श्रीरामकृष्ण की प्रयोजनीयता पर कुछ कहूँगा।

अक्सर लोग पूछते हैं, खासकर नयी पीढ़ी के लोग, स्कूल कॉलेज में पढ़ने वाले युवा छात्रगण, कि आज हम इक्कीसवीं सदी की चौखट पर खड़े हैं, अगले वर्ष ही, मात्र ग्यारह महीनों के बाद ही हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर जाएँगे। ऐसी स्थिति में उन्नीसवीं सदी के मध्य के देवमानव श्रीरामकृष्ण हमें कौन-सी प्रेरणा दे सकते है? इक्कीसवीं शताब्दी अर्थात् वैज्ञानिक सभ्यता, तकनीकी-प्रोद्योगिकी परिवेश, कम्प्यूटर की सभ्यता और भौतिक-दैहिक भोगों-उपभोगों की संस्कृति! और श्रीरामकृष्ण अर्थात् कुछ धर्म-चेतनाओं के अस्थि-चर्ममय विग्रह! कहाँ तालमेल है दोनों में?

नयी मनीषा पीछे की ओर मुड़ना नहीं चाहती। चाहिए भी नहीं। नयी वैज्ञानिक दृष्टि, बौद्धिक चेतना, कर्मदक्षता उन्मुक्त जीवन शैली और तकनीकी विकास को छोड़कर, एक विलक्षण ऊर्जा के संभार से स्पन्दित आगत के आलोक से मुँह मोड़कर क्या हम मुट्ठी भर धर्मोपदेशों से आक्रान्त विगत के दामन को पकड़े रहकर संघर्षशीलता की नयी दुनिया में जीवित रह भी सकते हैं? शायद नहीं। तो फिर श्रीरामकृष्ण हमारे जीवन में कहाँ उतर सकते हैं, कैसे उतर सकते हैं, क्यों उतर सकते हैं? निश्चय ही ये प्रश्न युवाजनों को मथ देते हैं।

कहाँ एक अपढ़ अशिक्षित गँवार गरीब ब्राह्मण, मात्र ढाई रुपये प्रतिमाह पर रानी रासमणि के काली मन्दिर में सेवारत पुजारी, आधुनिक सभ्यता से कोसों दूर, कभी नग्न कभी अर्द्धनग्न होकर सदैव भावोन्माद में रहनेवाले रामकृष्ण और कहाँ अपार ऊर्जा और शक्ति से व्यस्त विद्युतकणों से चौंधियाने वाली रोशनी लेकर उतरती हुई इक्कीसवीं सदी की सभ्यता। नहीं, कोई तालमेल, कोई मिलन बिन्दु नहीं हैं दोनों में :—सोचती है नयी पीढ़ी।

मगर ठहरिए। आतुरता में लिया गया निर्णय विनाशकारी, आत्मघाती और विध्वंसक सिद्ध हो सकता है। श्री रामकृष्ण इक्कीसवीं सदी के मानव, मानव सभ्यता और विश्वजीवन के लिए एक अनुपेक्षणाय अनिवार्यता हैं, एकान्त अवश्यकता है, क्यों?

इक्कीसवीं सदी विज्ञान की सदी होगी, कार्यक्षमता और तर्कसम्मत, बुद्धिगम्य वैचारिकता की सदी होगी, बौद्धिक ऊर्जा से उपलब्ध संसाधनों के उन्मुक्त भोग की सदी होगी। यह सदी उस नदी की भाँति होगी जिसके प्रवाह में ठहराव या पड़ाव नहीं, केवल आकुल गतिशीलता होगी, हर पिछली लहर अगली लहर को ठेलती-धकेलती आगे बढ़ने को आतुर, विकल होगी और वह भी बिना यह जाने कि इस आतुर यात्रा का अन्तिम लक्ष्य क्या है, इस महाभिनिष्क्रमण का चरम उद्देश्य क्या है।

क्या श्रीरामकृष्ण में बौद्धिक ऊर्जा नहीं थी? क्या उनकी दृष्टि वैज्ञानिक नहीं थी? क्या उनकी जीवन शैली सत्य के उद्घाटन के लिये सतत् समर्पित नहीं थी? जरा हम विचारें।

इक्कीसवी सदी की सभ्यता मानव मस्तिष्क की उस साधना या शिक्षण की प्रस्तुति या उपज होगी जिसे हम विज्ञान कहते हैं। किन्तु विज्ञान है क्या? विज्ञान के दो पक्ष हैं—एक है विशुद्ध विज्ञान, वह विज्ञान जो एक आतुर जिज्ञासा के साथ प्रत्यक्ष अनुभवों के सत्य को जानने के लिए आन्तरिकता-पूर्वक प्रयास करता है और दूसरा है प्रयुक्ति या प्रायोगिक विज्ञान, वह विज्ञान जिसमें विशुद्ध विज्ञान के द्वारा उद्घाटित सत्य आविष्कार के रूप में मानव जीवन की तकनीकी सम्पन्नता के लिये कार्य करता है। प्रथम को ज्योतिर्मय विज्ञान (Science as lucifera) और दूसरे को फलीभूत विज्ञान (Science as Fractifera) कहते हैं। ज्ञान से शक्ति प्राप्त होती है और उस शक्ति के द्वारा हम प्रकृति की शक्तियों को नियमन करते हैं तथा अपने अनुकूल कार्यों का सम्पादन करते हैं। विशुद्ध विज्ञान की नयी खोज आगे चलकर प्रायोगिक विज्ञान में बदल जाती है। प्रकृति की शक्तियों के नियमन और मनोनुकूल संचालन में परिवर्तित हो जाती है। मानव मस्तिष्क की यह एक विलक्षण शक्ति है जिससे वह पहले प्रकृति में छिपे सत्य की खोज करता है और फिर उस खोज के द्वारा उसी प्रकृति की शक्ति का नियमन कर उसे अपनी सुविधा के लिये, सुखों के लिये संचाचित करने लगता है। इस प्रकार एक पर एक सत्य का उद्घाटन करते हुए मानव आज नाभिकीय विज्ञान और अंतरिक्ष यात्रा तथा अंतरिक्ष-युद्ध के विलक्षण युग में पहुँच गया है।

किन्तु इस विज्ञान की अपनी सीमाएँ हैं। कुछ आधुनिक महान पदार्थ-वैज्ञानिकों की मान्यता है कि विज्ञान ने हमारे इर्द-गिर्द के जिस विश्व को उद्घाटित किया है वह इस जगत का केवल बाहरी पक्ष है। इस इन्द्रिय गोचर जगत के पीछे एक अदृश्यमान जगत भी है। विज्ञान केवल उन्हीं प्रतीयमान वस्तुओं का विवेचन करता है जो हमारी इन्द्रियों के समक्ष प्रकट है अथवा जिन्हें कुछ उपकरणों से हम अपनी इन्द्रियों के समक्ष प्रकट कर सकते हैं। विज्ञान केवल जगत् के दृश्यमान अंश को समझने तथा इसकी ऊर्जाओं को मानवोपयोगी बनाने तक ही अपने को सीमित रखता है। किन्तु इन्द्रियातीत जगत को जाने बिना हम जगत के मूल सत्य को जान हीं नहीं सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण फलमय विज्ञान की अपेक्षा ज्योतिर्मय विज्ञान के साधक हैं। इतना ही नहीं, वे इन्द्रिय गोचर जगत की अपेक्षा इन्द्रियातीत जगत् के अंतर्निहित सत्यों को उद्घाटित करने के लिये अपने प्राणों की आतुरता, गहरी आंतरिकता और तीव्र उत्कंठा से लीन होकर तब तक नहीं रुकते जब तक उस सत्य को जान नहीं लेते। इसीसे उन्होंने 'चावल सब्जो' दिलाने वाली विद्या प्राप्त करने से अपनी किशोरावस्था में हीं मुँह फेर लिया था।

सत्य की खोज में उद्विग्न आधुनिकता की समस्त विशिष्टताओं से सम्पन्न नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) जिस दिन श्रीरामकृष्ण के समक्ष उपस्थित हुए थे उस दिन मानो इक्कीसवीं सदी ही अपनी सीमाओं से उद्विग्न अधीर होकर चिरन्तन अलौकिक सत्य के शोधक के समक्ष नतमस्तक हुई थी।

औपनिषदिक युग में एक महाविद्यालय के अधिष्ठाता महर्षि शौनिक ने ऐसी ही उद्विग्नता लेकर महर्षि अंगिरा के समक्ष उपस्थित हो जिज्ञासा की थी—'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिद विज्ञातं भवतीति।' (मुण्डक १/३) अर्थात् हे भगवन् यह बतलाये कि किस एक को जान लेने पर सबकुछ जान

लिया जाता है ? महर्षि अंगिरा ने कहा— द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो, यजुर्वेद, सामवेदोऽथर्ववेद: शिक्षा कल्पों व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरम धिगम्यते। अर्थात् विद्याएँ दो हैं—परा और अपरा। वेद शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द, ज्योतिष आदि अपरा विद्या हैं तथा जिससे वह अविनाशी पर ब्रह्म तत्व से जाना जाता है वह परा विद्या है। अपरा लौकिक विद्या है। यह विज्ञान का वह पक्ष है जिससे भौतिक दृश्यमान जगत को जाना जाता है। और परा वह विद्या है, विज्ञान का वह पक्ष है जिससे इन्द्रियातीत जगत के सत्य का उद्घाटन किया जाता है।

श्रीरामकृष्ण परा विद्या के साधक थे। विश्व के परा विद्या के साधकों के इतिहास में श्रीरामकृष्ण अद्वितीय थे। सत्य को जानने की ऐसी तीव्र पिपासा इनके पूर्व किसी में थी, मुझे नहीं मालूम। परा विद्या के किसी एक पक्ष को ही जानकर विश्व के महान साधक भगवान के रूप में मान्य हो गये। किन्तु श्रीरामकृष्ण की सत्यानुसंधान की यात्रा असीमित थी। उन्होंने सगुण साकार, सगुण निराकार, निर्गुण निराकार, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, सब की साधना की। शैव, शाक्त, तांत्रिक, वैष्णव सभी पद्धतियों की साधना की। इतना ही नहीं, हिन्दू धर्म के बाहर ईसाई और इस्लाम धर्मों की भी साधना की। लगता है सत्य के परिज्ञान की इतनी गहरी पिपासा थी श्रीरामकृष्ण में कि वे किसी एक पथ पर चलकर ही विश्राम नहीं लेना चाहते। उस अनन्त को जानने परखने के जो भी मार्ग हो सकते हैं, वे सब पर चले। यह है विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि। यही है इक्कीसवीं सदी के मनुष्य के लिए एक दिशा संकेत। यह दृष्टि नहीं अपनाने पर हम केवल फलमय विज्ञान के पुजारी होकर भौतिक सुखों के एक निरीह भोक्ता हो जाएँगे। फिर तो इक्कीसवीं सदी हमारे दु:खों का कारण ही बनी रहेगी।

श्रीरामकृष्ण की वैज्ञानिक दृष्टि की एक और महिमा है। अनन्त को जानकर अखिल जगत को उसी सत्य के रूप में उन्होंने देखा। वे जगत में व्याप्त परम चैतन्य से एकमेक हो गये, सान्त होकर अनन्त से समरस हो गये। इसी से डाल पर लगे फूल उन्हें ईश्वर पर चढ़े दिखते थे, दूब पर चलने में उन्हें कष्ट होता था और किसी मछुआरे की पीठ पर तमाचे लगने पर उनकी पीठ पर दाग उभर आता था। यानी विश्वचेतना से ही वे जुड़ गये थे। इक्कीसवीं सदी में अगर हमने यह दृष्टि नहीं पायी तो हमारी वैज्ञानिकता का दावा खोखला ही बना रहेगा।

एक बात और। अब तक के अवतार श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्री बुद्ध, श्री महावीर, मुहम्मद सभी जन्म से ही श्रीसम्पन्न थे। राजे, महाराजे थे। वे बड़े थे और मानव की तरह उन्होंने आचरण किया था। इसी से उनकी कर्म लीला थे। किन्तु श्रीरामकृष्ण जन्म से निर्धन थे, विपन्न थे। दरिद्र थे, वे जन्म से मनुष्य थे और उन्होंने ईश्वर की भाँति आचरण किया था। एक मनुष्य अपने को कैसे ईश्वर बना सकता है, श्रीरामकृष्ण ने प्रदर्शित कर दिखाया। यही हमारे जीवन का उद्देश्य होना चाहिए। हम मनुष्य हैं, भोग के लिये नहीं, हम मनुष्य है देवत्व में रूपान्तरित होने के लिये। और स्वयं देवता बनकर श्रीरामकृष्ण सतुष्ट नहीं होते हैं। वे श्री सारदा देवी की पूजा जगद्धात्री के रूप में करके उन्हें भी मानुषी से भवतारिणी बना देते हैं। अर्थात् स्वयं देवत्व प्राप्त करना काफी नहीं है, हमें देवत्व प्राप्त

कर सबको उसी महत्त रूप में प्रतिष्ठित कर देना होगा। यह है सच्ची वैज्ञानिकता, सच्ची सत्यानुसंधान की दृष्टि। इक्कीसवीं सदी में अगर हम इस दृष्टि को लेकर प्रवेश नहीं करते तो इक्कीसवीं सदी का नारा एक सूखा रसहीन कोलाहल मात्र होकर रह जाएगा।

भगवान श्रीरामकृष्ण से मेरी आंतरिक प्रार्थना है कि वे हमें वह वैज्ञानिक चेतना प्रदान करें जिससे हम जगत में अन्तर्निहित परम सत्य को शोधकर स्वयं देवत्व में ढाल सकें तथा अखिल जड़ चेतन के साथ एकात्मता का बोधकर जीवन और जगत को धन्यता प्रदान कर सकें। जय श्रीरामकृष्ण।

विवेक शिखा की 'संरक्षक'-योजना

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' की एक योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रुपये या इससे अधिक रुपये विवेक शिखा के 'स्थायी कोष' के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। 'विवेक शिखा' में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे यावज्जीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इस पत्रिका के संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू है।

—व्यवस्थापक

संरक्षक-सूची

संरक्षक का नाम	स्थान	रुपये
१. श्रीमती कमला घोष	इलाहाबाद	३,९९०/-
२. श्री नन्द लाल टांटिया	कलकत्ता	१,०००/-
३. श्री हरवंश लाल पाहड़ा	जम्मूतवी	१,०००/-
४. श्रीमती निभा कौल	कलकत्ता	१,०००/-

शान्ति

—स्वामी विवेकानन्द

[न्यूयार्क के रिजले मॅानर में अंग्रेजी में लिखित कविता, १८६६ ई०]

देखो, जो बलात् आती है,
वह शक्ति, शक्ति नहीं है !
वह प्रकाश, प्रकाश नहीं है,
जो अंधेरे के भीतर है,
और न वह छाया, छाया ही है,
जो चकाचौंध करनेवाले प्रकाश के साथ है।

वह आनन्द है, जो कभी व्यक्त नहीं हुआ,
वह अनभोगा, गहन दुःख है,
अमर जीवन जो जिया नहीं गया
और अनन्त मृत्यु, जिस पर किसी को शोक नहीं हुआ।

न दुःख है, न सुख,
सत्य वह है,
जो इन्हें मिलाता है।
वह रात है, न प्रात,
सत्य वह है जो इन्हें जोड़ता है।

वह संगीत में मधुर विराम,
पावन छंद के मध्य यति है,
मुखरता के मध्य मौन,
वासनाओं के विस्फोट के बीच
वह हृदय की शान्ति है।

सुन्दरता वह है, जो देखी न जा सके।
प्रेम वह है, जो अकेले रहे।
गीत वह है, जो बिना गाये जिये।
ज्ञान वह है, जो कभी जाना न जाय।

जो दो प्राणों के बीच मृत्यु
और दो तूफानों के बीच एक स्तब्धता है,
वह शून्य, जहाँ से सृष्टि आती है,
और जहाँ वह लौट आती है।
वहीं अश्रु विन्दु का अवसान होता है,
प्रसन्न रूप को प्रस्फुटित करने को
वही जीवन का चरम लक्ष्य है,
और शान्ति ही एकमात्र शरण है।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः

लेखक : स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज
अनुवाद : स्वामी ब्रह्मेशानन्द

[स्वामी यतीश्वरानन्द जी कृत 'How to Seek God' का अनुवाद।]

ध्यान की पद्धति निम्न प्रकार है : (१) ईश्वर के ज्योतिर्मय रूप का ध्यान (२) उनके सद्‌गुणों का ध्यान (३) उनके अनन्त चैतन्य का ध्यान, उनके क्षुद्र व्यक्तित्व का नहीं बल्कि अनन्त सत्ता का ध्यान। श्रीरामकृष्ण माँ जगदम्बा के आनन्द-मय रूप का ध्यान करते थे। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को अनुभूति कराई कि साकार, निराकार की ही अभिव्यक्ति है। वे कहते थे : मेरी माँ की ज्योति त्रिभुवन को आलोकित कर रही है। माँ उनके लिए परम ज्योति थीं। वे सर्वत्र हैं लेकिन हमें उनका भान नहीं है। उनकी कृपा होने पर हम उनकी विद्यमानता का अनुभव कर पाते हैं। साधना द्वारा क्या परमात्मा को अपने निकट खींचा जा सकता है ? वे दूर नहीं हैं। अभी हमें उनकी सत्ता का अनुभव नहीं हो रहा है। निष्ठा-पूर्वक साधना करने पर चित्त शुद्ध होता है और हम उनकी सत्ता का अनुभव करने लगते हैं। क्या दीपक को प्रकाशित होने के लिये बाध्य करना पड़ता है ? प्रकाश सर्वदा विद्यमान है। दर्पण जितना साफ होगा, प्रतिबिम्ब उतना ही सतेज होगा। ईश्वर हमारा स्वागत करने के लिये सदा आतुर हैं, लेकिन हम उनकी ओर नहीं मुड़ते।

भगवद्‌गीता में श्री कृष्ण चार प्रकार के भक्त बताते हैं। ज्ञानी, जो स्वभावतः भगवान को भजते हैं। आर्त—जो कष्ट निवारण के सभी मानवी उपायों को आजमाने के बाद भगवान की ओर मुड़ते हैं। अर्थार्थी—जो समस्त इच्छाओं के असफल होने पर भगवान को आजमाना चाहता है, और जिज्ञासु जो यह जानना चाहता है कि क्या भगवान हैं और यदि हैं तो कैसे हैं। भगवान कहते हैं, ये सब महान और अच्छे हैं। क्यों ? क्योंकि भगवान् हमारी आत्मा की आत्मा हैं; वे हम सभी को प्रेम करते हैं, तथा हमें उन तक उठाना चाहते हैं। पारस पत्थर किसी धातु का स्पर्श करने पर प्रसन्न होता है। ईश्वर कृपामय हैं। उनका प्रकाश सदा चमक रहा है। जिस मात्रा में हमारा दर्पण साफ होगा उसी मात्रा में हम उनके प्रकाश को ग्रहण कर पायेंगे। साधना का यही महत्व है।

भगवान अपने को प्रकट करने को व्यग्र हैं। अपनी ओर से जो करना है, उसे पूरी तरह करो। बाकी कार्य परमात्मा की शक्ति कर लेगी। श्रीरामकृष्ण की ओर आकृष्ट हुए लोग प्रकाश चाहते हैं। यह प्रकाश कहाँ है ? प्रकाश का एक मात्र स्रोत 'ज्योतिषामपि ज्योतिः', अर्थात् ज्योतियों की भी ज्योति है। यह कोई भौतिक प्रकाश नहीं है, बल्कि चैतन्य का प्रकाश है। उपनिषद में एक शिष्य की कथा है, जो गुरु से पूछता है : 'मानव किसके प्रकाश से देखता है ?' गुरु उसे धीरे-धीरे क्रमबद्ध रूप से उपदेश देना चाहते हैं। वे कहते हैं, 'सूर्य के प्रकाश से।' शिष्य सन्तुष्ट नहीं होता। 'सूर्य एवं चन्द्रमा के न होने पर क्या होता है ?' गुरु उत्तर देते हैं : 'दीपक के प्रकाश से।' 'जब दीपक बुझा दिया जाय तब ?' 'वाणी' गुरु कहते है, अंधेरे में वाणी दिशा बताती है।" शिष्य पूछता है : 'वाणी के शान्त होने पर मानव की ज्योति

क्या है ?' 'आत्म-ज्योति', गुरु ने उत्तर दिया। जब तक वह है तब तक हम देख सकते हैं। इस ज्योति को कैसे देखें ? हमारी देह, इन्द्रिय, मन एवं अहंकार रास्ते में आते हैं। आन्तरिक अथवा बाह्य विषयों को हम जिन कारणों द्वारा देखते हैं वे ही आत्मा की चैतन्य ज्योति को देखने का प्रयत्न करते समय बाधा बन जाते हैं।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि आत्मा आनन्दमय, विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय तथा अन्नमय, इन पाँच कोषों से आवृत है। दूसरे शब्दों में ये ही कारण, सूक्ष्म तथा स्थूल इन त्रिशरीरों के रूप में वर्णित हैं। आत्मा पंचकोषों अथवा तीन शरीरों के परे, बिना किसी अन्य सहायता के ज्योतिर्मय, तथा इन आवरणों को भेदते हुए प्रकाशित हो रही है। वह हमारी वास्तविक सत्ता है। हम एक के भीतर दूसरे आवरण से आच्छादित ज्योति पुंजों के समान हैं। अतः अपनी वास्तविक आत्मा को, अपने स्वरूप को जानने के लिए हमें बाधा-स्वरूप इन पाँच कोषों अथवा तीन शरीरों को भेदते हुये अपने भीतर गहरे पैठना होगा। हम इन देहों को बहुत महत्व देते हैं। स्थूल देहों के रूप में तो हम नर या मादा पशु मात्र हैं। थोड़ी प्रगति करने पर भी, हम अपने मन द्वारा बंध जाते हैं और अपने विचारों, भावनाओं एवं संवेदनाओं के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। लेकिन एक रास्ता है। हृदय मंदिर में प्रवेश करो; तथा स्पन्दित होती अपनी चेतना का वहाँ अनुभव करो। वही आत्मचेतना का केन्द्र है। यही समग्र शरीर और मन में अनुस्यूत है। वह व्यष्टि आत्मा है जो परमात्मा की एक किरण है। वही आत्मा सर्वव्यापी चैतन्य अथवा परमात्मा के साथ जोड़ने वाली कड़ी है। उसी चैतन्य में, ईश्वर में, अपने शरीर, मन, अहंकार आदि सभी को विलीन करो। सोने के ठीक पूर्व के मनोभाव को बनाये रखो। उस समय शरीर व मन की क्रियायें धीरे-धीरे रुक जाती हैं, लेकिन तुम स्वयं फिर भी जाग्रत रहते हो। स्वयं को निद्राभिभूत होने मत दो। मन या तो चंचल रहता है या हम सो जाते हैं। हृदय से प्रारम्भ कर उच्च से उच्च स्तर तक, चेतना के अन्तिम केन्द्र तक पहुँचने का प्रयत्न करो, जहाँ कोई विचार नहीं रहता और केवल आत्म चैतन्य प्रकाशित रहता है।

इष्ट अथवा किसी सन्त महापुरुष का ध्यान करते समय इस दिव्य चैतन्य की प्राप्ति ही लक्ष्य होता है। इस प्रक्रिया में ज्योतिर्मय रूप का ध्यान स्थूल शरीर के समरूप है। इसके बाद दैवी सद्-गुणों का ध्यान किया जाता है जो मन तथा सूक्ष्म शरीर के बराबर है। भक्त को इनका अतिक्रमण कर परमात्मा तक, शुद्ध चैतन्य तक पहुँचना चाहिये; जो स्वयं की आत्मा एवं सर्वव्यापी परमात्मा ही है। इस चरम अवस्था की उपलब्धि का सर्वश्रेष्ठ उपाय जप है। माँ सारदा के सुन्दर उपदेश का स्मरण करो :—'जिस प्रकार पूजा के चन्दन चर्चित पुष्पों को छूने से चन्दन की गन्ध तुम्हारे हाथों में आ जाती है, उसी प्रकार भगवान का चिन्तन करने से मन भी उर्ध्वमुखी हो जाता है।'

भौतिक से मानसिक स्तरों पर जाकर अपने विचारों के साक्षी बनो। हम सदा सोचते रहते हैं कि सत्य, ज्योति, हम से बाहर है। अब हमें अनुभव होने लगता है कि वह भीतर भी है। यह अनुभव होता है कि तुम अपने विचारों के साक्षी तथा अपने मन से स्पष्ट रूप से पृथक हो। तुम अपनी अहंचेतना को जानने लगते हो। आगे बढ़ो और इस अहंचेतना के अन्तिम स्रोत, उस आदि कारण तक पहुँचने का प्रयत्न करो जहाँ से चेतना का प्रकाश आता है। तब तुम्हें पता चलेगा कि तुम वही प्रकाश हो और सदा वही

सब कुछ टूट रहा है।" आखिर मैं किस पर निर्भर हूँ। यह आध्यात्मिक संकट का समय होता है। तुम सोचते हो, "जिसे मैं सत्य मानता था, असत्य प्रतीत हो रहा है।" तुम सुरक्षा के लिये दूसरों पर निर्भर थे, जो स्वयं असुरक्षित हैं। वे दूसरों की सुरक्षा कैसे बन सकते हैं? जब तक तुमने अपनी आत्मा को नहीं जाना तब तक तुमने कुछ भी नहीं जाना। इस सत्ता को जाने बिना तुम्हारे जीवन का कोई आधार ही नहीं है। भीतर ज्योति जल रही है, लेकिन तुम देख नहीं रहे हो। तुम बाहर की ओर देख रहे हो। वह ज्ञान की, प्रज्ञा की ज्योति है, जो मन एवं अहंकार के भीतर से प्रकाशित हो रही है। जब सात्विक मनोवृत्ति होती है, तब व्यक्ति संतुलित रहता है और ज्योति अच्छी तरह प्रकाशित होती है। राजसिक प्रकृति के माध्यम से वह कम प्रकाशित होती है, और तामसिक प्रकृति से और भी कम। मैंने प्रजापति के पास आत्मा को जानने के लिये गये इन्द्र और विरोचन की कथा सुनाई थी। गुरु ने क्या कहा था? नेत्रों से प्रकाशित हो रही ज्योति को देखो इत्यादि। दैवी प्रकृति वाला व्यक्ति अन्ततः इस उपदेश पर ध्यान कर सत्य को समझ पाया। लेकिन आसुरी प्रकृति वाला व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि देह ही आत्मा है।

मानव में विद्यमान उस ज्योति का ध्यान करो। आत्मा के देह को त्यागने पर सभी इन्द्रियाँ बनी रहती हैं, लेकिन उनमें क्रिया नहीं हो पाती। वह ज्योति मन, इन्द्रियों एवं देह के माध्यम से प्रकाशित होती है। यह जीवन्त चेतन है एवं क्षुद्र अहंकार के साथ मिल जाती है। परमात्मा का प्रकाश बादल के एक छोटे से टुकड़े में प्रकाशित होता है, और हम उसे छोटे से मानव व्यक्तित्व के रूप में देखते हैं। अज्ञान के कारण हम इस क्षुद्र अहंकार से तादात्म्य स्थापित कर छोटे एवं सीमित प्राणी बन जाते हैं। चैतन्य एवं जड़ मिल जाते हैं, और यही समग्र दुःख एवं कष्ट का कारण है। मन और अहंकार भी सूक्ष्म भूल है। हमें विवेक एवं ध्यान द्वारा चैतन्य को अन्य सभी वस्तुओं से पृथक् करना है। उसे सभी बन्धनों से मुक्त करना है :

आज हमें रजोगुण की अतीव आवश्यकता है। आज जिन्हें तुम सात्त्विक समझते हो, उनमें नब्बे प्रतिशत से भी अधिक लोग असल में घोर तमोगुण में डूबे हुए हैं। हमें आज जिसकी आवश्यकता है, वह है राजसिक शक्ति की प्रचुरता, क्योंकि सारा देश तमोगुण के आवरण में ढका हुआ है। यहाँ के लोगों को रोटी और कपड़ा दो—उन्हें जगाओ—उन्हें और भी अधिक क्रियाशील बनाओ। अन्यथा वे तो पत्थरों और वृक्षों के सदृश जड़ हो जाएँगे।

—स्वामी विवेकानन्द

अवतरण तिथि-उत्सव : १८ फरवरी

सेवा-मूर्ति श्रीरामकृष्ण परमहंस

—ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द

विश्व के आध्यात्मिक इतिहास में श्रीरामकृष्ण परमहंस का स्थान अतुलनीय है। उनके जीवन में आध्यात्मिक अनुभूतियों की जितनी विविधता दिखायी देती है, उतनी और किसी महापुरुष के जीवन में दृष्टिगोचर नहीं होती। उनका जीवन मानो धर्म और अध्यात्म का एक विराट् प्रयोग-शाला था, जहाँ अनेक नवीन भावों का आविष्करण और पुरस्करण सम्पन्न हुआ था। उनके जीवन के द्वारा प्रकट सेवाभाव उनकी इन्हीं आध्यात्मिक अनुभूतियों का बाहरी प्रकाश था।

श्रीरामकृष्ण परमहंस निर्विकल्प समाधि की उपलब्धि कर अद्वैतानुभूति में प्रतिष्ठित हो गये थे। फलस्वरूप, सर्वत्र उन्हें उसी एक आत्मज्योति के दर्शन होते। उनकी अवस्था "आत्मवत् सर्वभूतेषु" की हो गयी थी। उनकी यह एकत्वानुभूति इतनी तीव्र और गहरी थी कि किसी व्यक्ति के हरी-हरी दूब को रौंदते हुए चलने पर उन्हें लगा कि वह उनकी छाती को ही रौंदते हुए चला जा रहा है। दो माझियों में लड़ाई हो जाने मे एक ने दूसरे की पीठ पर जोरों से तमाचा जड़ दिया। श्रीरामकृष्ण को ऐसा लगा कि वह तमाचा उन्हें ही लगा है और वे पीड़ा से कराह उठे। इनकी पीठ पर ऊँगलियों के निशान उभर आये, मानो माझी ने उन्हीं की पीठ पर तमाचा मारा हो।

ये घटनाएँ अविश्वसनीय होने पर भी सत्य हैं। श्रीरामकृष्ण का सेवाभाव उनके इसी एकत्वानुभव पर खड़ा था। वेदान्त दर्शन का सर्वोच्च लक्ष्य यही एकत्वानुभूति है। श्रीरामकृष्ण ने वेदान्त को अपने जीवन में उतार कर यह प्रदर्शित कर दिया कि वह केवल बुद्धि का व्यायाम नहीं है, केवल तर्कणाओं और युक्तिविचारों का जाल नहीं। बल्कि जीवन का अनुभूतिगम्य सत्य है। उन्होंने यह भी प्रदर्शित किया कि वेदान्त को व्यावहारिक बनाया जा सकता है, और इस व्यावहारिक वेदान्त को उन्होंने "सेवा" के नाम से पुकारा। उनका तर्क यह था कि जब सारा संसार उसी ईश्वर से निकला है, उसी में प्रतिष्ठित है और एक दिन उसी में लीनता को प्राप्त हो जायगा, तो फिर ईश्वर छोड़ संसार में और क्या है? इसका यही तात्पर्य हुआ कि वही ईश्वर, जो मुझमें समाया है एक पीड़ित के भीतर भी छिपा है। तो क्या यह उचित नहीं कि हम पीड़ित में निहित उस ईश्वर को सेवा के लिए आगे बढ़ आयें? जो ईश्वर पर विश्वास करता हुआ भी दुःखी के भीतर विराजमान ईश्वर की सेवा के लिए चेष्टाशील नहीं है, श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में उस व्यक्ति का ईश्वर में विश्वास होना या न होना बराबर है। इस दृष्टि से उन्होंने सेवा पर एक नया प्रकाश डाला और इस प्रकार उसे दया से भिन्न कर दिया।

कहा गया है—'मातृ देवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव, मैं तुम लोगों को आगे का पाठ पढ़ाता हूँ—'दरिद्रदेवोभव, पीड़ित-देवो भव, आर्तदेवो भव।' उन्होंने कहा था—

'सारी उपासना का सार है—पवित्र होना और दूसरों की भलाई करना। जो शिव को दीन-हीन में, दुर्बल में और रोगी में देखता है, वही वास्तव में शिव की उपासना करता है, और जो शिव को केवल मूर्ति में देखता है, उसकी उपासना तो केवल प्रारम्भिक है। जो मनुष्य शिव को केवल मन्दिरों में देखता है, उसकी अपेक्षा शिव उस व्यक्ति पर अधिक प्रसन्न होते हैं, जिसने बिना किसी प्रकार जाति, धर्म या सम्प्रदाय का विचार किये, एक दीन-हीन में शिव को देखते हुए उसकी सेवा और सहायता की है।'

स्वामी विवेकानन्द ने सेवा की अपनी प्रेरणा अपने गुरुदेव से प्राप्त की थी। श्रीरामकृष्ण का जीवन ही सेवामय था, वे सही अर्थों में सेवामूर्ति थे। अन्तिम समय में जब उन्हें गले का कैंसर हो गया था और चिकित्सकों ने उन्हें बोलने से मना किया था, तब भी वे आगत जिज्ञासुओं से वार्तालाप करना बन्द न करते। सेवकों और भक्तों के अधिक निषेध करने पर कहते, 'यदि एक व्यक्ति को सहायता करने के लिए मुझे बीस हजार जन्म लेने पड़ें तो स्वीकार है। सेवा को उनकी यह आन्तरिकता उनके सर्वात्मबोध पर प्रतिष्ठित थी, जिसका बड़ा ही मार्मिक परिचय हमें उनके जीवन की एक घटना से मिलता है।

पंडित शशधर शास्त्री तर्क चूड़ामणि श्रीरामकृष्ण की अस्वस्थता का समाचार सुन उन्हें देखने आये। शास्त्री का नाम उनकी विद्वत्ता और पाण्डित्य के लिए बंगाल भर में विख्यात था। तब श्रीरामकृष्ण गले के रोग के कारण अन्न ग्रहण नहीं कर सकते थे। उन्हें तीव्र वेदना हुआ करती। शास्त्रीजी ने उन्हें सुझाव दिया, 'महाराज हमारे योगशास्त्रों का कथन है कि यदि योगी अपने किसी रुग्न अंग पर मन केन्द्रित करें, तो उससे अंग स्वस्थ हो जाता है। आप तो महान योगी हैं। आप क्यों नहीं अपने मन को गले पर एकाग्र करके रोग को ठीक कर लेते?' इस पर श्रीरामकृष्ण ने कुछ खीज के स्वर में कहा, "कैसे पण्डित हो जी। जिस मन को मैंने जगदम्बा के पदपद्मों में समर्पित कर दिया है, तुम कहते हो कि उसे मैं वहाँ से वापस ले लूँ और इस हाड़मांस के सड़े-गले पिण्ड पर लगा दूँ। ऐसी बात कहते तुम्हें लज्जा नहीं आती?" और सचमुच शास्त्रीजी लज्जित हो गये। उन्होंने क्षमायाचना कर कुछ समय बाद श्रीरामकृष्ण से विदा ली। शास्त्री के जाने के बाद नरेन्द्रनाथ ने श्रीरामकृष्ण को पकड़ा, कहा, 'महाराज, शास्त्रीजी ने तो ठीक ही कहा। आपको इतना कष्ट है, आप कुछ खा-पी नहीं सकते, इसलिए हम लोग भी अत्यन्त दुःखी हैं। आप, कुछ कम से कम, हम लोगों के लिए अपने मन को गले पर केन्द्रित कीजिए न।' श्रीरामकृष्ण बोले, 'आखिर तू भी वही कहता है रे, मैं यह नहीं कर सकता।' पर जब नरेन्द्र ने खूब जोर दिया तो उन्होंने कहा, 'मैं कुछ नहीं जानता, माँ जगदम्बा जैसा करेंगी वैसा होगा।' नरेन्द्र इस पर बोले, 'महाराज, आप जो कहेंगे, सो जगदम्बा करेंगी। आप हम लोगों के लिए माँ से कहिए न।' लाचार हो श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'ठीक है, देखूँगा।' थोड़ी देर बाद नरेन्द्र ने आकर पूछा, 'महाराज, आपने हमारी बात माँ से कही थी।' वे उत्तर में बोले हाँ, मैंने माँ से कहा—माँ, नरेन कहता है कि इस रोग के कारण मैं कुछ खा-पी नहीं सकता हूँ, इसलिए इन लोगों को बहुत कष्ट होता है।

यह सन् १८८४ ई० की घटना है। श्रीरामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर स्थित काली-मंदिर के अपने कमरे में भक्तों से घिरे बैठे हुए थे। नरेन्द्र भी वहाँ उपस्थित थे, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से विश्वविख्यात हुए। वार्तालाप के प्रसंग में वैष्णव-मत की बात उठी। इस मत के सारे

तत्व को संक्षेप में व्यक्त करते हुए श्रीरामकृष्ण बोले 'इसके अनुसार ये तीन बातें नित्य करणीय है— नाम में रुचि जीव पर दया, वैष्णव की सेवा। जो नाम है, वही ईश्वर है नाम और नामी को अभिन्न जानकर सर्वदा अनुरागपूर्वक नाम जपना चाहिए, भक्ति और भगवान, कृष्ण और वैष्णव को अभिन्न जानकर सर्वदा साधु भक्तों के प्रति श्रद्धा और उनकी सेवा करनी चाहिए, तथा यह सारा विश्व कृष्ण का ही है ऐसा समझकर सब जीवों पर दया—"। "सब जीवों पर दया" इतना कहकर ही श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हो गये। वे वाक्य को पूरा भी न कर पाये। कुछ समय पश्चात् जब उनकी अर्धचेतना लौटी तो वे कहने लगे, 'जीवों पर दया—जीवों पर दया। दूर हो मूर्ख। तू कीटाणुकीट। जीवों पर दया करेगा। दया करने वाला तू होता कौन है? नहीं—जीवों पर दया नहीं—शिवज्ञान से जीवों की सेवा।"

नरेन्द्र यह सुनते ही चमत्कृत हो उठे। उन्हें लगा कि "दया" और "सेवा" का ऐसा अन्तर सम्भवतः पहले किसी ने नहीं किया था। "दया" कहने से प्रतीत होता है मानो दया करने वाला बड़ा है और जिस पर दया की जा रही है, वह छोटा। इस प्रकार दया की प्रक्रिया ऊंच और नीच के भेद को बनाये रखकर चलती है। पर 'सेवा' कहने से, 'शिव ज्ञान से जीवों की सेवा' कहने से बोध होता है कि वही शिव जो स्वयं सेवा करने वाले के भीतर विराजमान हैं, उसके भीतर भी बसे हुए हैं, जिसकी सेवा की जा रही है। इस प्रकार यहाँ भेद का नहीं, अभेद का प्रकाश है, ऊँच-नीच का नहीं, समानता का व्यवहार है।

ये वही नरेन्द्रनाथ थे जो निर्विकल्प समाधि के आनन्द में डूबे रहना चाहते थे। पहले उन्हें सेवा आदि की बात भाती नहीं थी। एक समय जब वे समाधि में डूबने के लिए अत्यन्त व्याकुल थे, तो श्रीरामकृष्ण ने उन्हें एकान्त में बुलाकर स्नेहपूर्वक पूछा था, 'नरेन, तू क्या चाहता है?' इस पर नरेन्द्रनाथ ने उत्तर दिया था, 'महाराज आशीर्वाद दीजिए कि मैं योगी शुकदेव की नाईं निर्विकल्प समाधि के आनन्द में अहर्निश डूबा रहूँ, और जब समाधि से उतरूँ तो शरीर को बनाये रखने के लिए थोड़ा सा अन्न पेट में डाल लूँ और फिर से समाधि में डूब जाऊँ।' पर यह सुन श्रीरामकृष्ण प्रसन्न नहीं हुए थे अपितु उन्होंने नरेन्द्र का तिरस्कार करते हुए कहा था 'छि: छि नरेन। कहाँ मैं सोचता था कि तू एक विशाल वटवृक्ष के समान होगा, जिसकी छाँव तले लाखों थके-माँदे लोग विश्राम ग्रहण करेंगे और कहाँ देखता हूँ तू अपनी मुक्ति के लिए कातर हो रहा है। अरे बेटा! अपनी मुक्ति की चेष्टा से भी उच्चतर अवस्था है।' और बाद में श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ को समझा दिया था कि जीव में शिव को देखकर, नर में नारायण को देखकर उस शिव या नारायण की सेवा ही अपनी मुक्ति के प्रयास से भी बढ़कर है।

तभी तो नरेन्द्रनाथ ने स्वामी विवेकानन्द बनकर अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण परमहंस के उपदेशानुसार "दरिद्रनारायण" की सेवा का प्रवर्तन किया। देश के युवकों का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा था - 'तुम्हें अभी तक पढ़ाया जाता था, मातृ देवो भव, पितृ देवो भव। मैं कहता हूं, मूर्ख देवो भव, दरिद्र देवो भव, रोगी देवो भव।

एक बार जब श्रीरामकृष्ण गले के रोग से पीड़ित थे और उन्हें खाया तक नहीं जाता था तब एक दिन नरेन्द्रनाथ ने इनसे कहा कि वे माँ काली से प्रार्थना करें कि वे कुछ खा-पी सकें। श्रीरामकृष्ण ने माँ काली से कहा। नरेन्द्र ने पूछा, क्या आपने माँ से कहा, श्रीरामकृष्ण ने उत्तर

दिया—'हाँ मैंने माँ से कहा कि नरेन्द्र कहता था कि मैं तुमसे इस रोग को ठीक कर देनेके लिए कहूँ, जिससे मैं कुछ खा-पी सकूँ, ताकि ये लोग भी सुखी हों।' तो फिर माँ ने क्या कहा, महाराज! नरेन्द्र अत्यन्त उत्सुक हो उनकी बात को बीच में काट बोल उठे। 'क्या बताऊँ रे,' श्रीरामकृष्ण ने मानो सोच में पड़कर कहा, 'माँ ने मेरी बात सुन कर तुम सब लोगों को इशारे से दिखाकर मुझसे कहा—क्या तू इतने मुँहों से नहीं खाता, जो तुझे खाने के लिए अलग से मुँह चाहिए। यह सुनकर मैं तो चुप हो गया। अब तू ही बता, इसका मैं माँ को भला क्या उत्तर देता! श्रीरामकृष्ण की अनुभूति की ऐसी व्यापकता को देख नरेन्द्र नाथ भी निरुत्तर रह गये, उनके मुख से कोई शब्द न फूटा।

तो वह एकत्वानुभूति थी जो सेवामूर्ति श्रीरामकृष्ण परमहंस के अपूर्व सेवामय जीवन का अटूट प्रेरणा-स्रोत थी।

□

श्रीरामकृष्ण देव की प्रासंगिकता

—स्वामी जितात्मानन्द
सचिव, रामकृष्ण आश्रम
राजकोट, गुजरात

(दूरदर्शन पर स्वामी जितात्मानन्द द्वारा अंग्रेजी में प्रदत्त वार्ता के आधार पर)

श्रीरामकृष्ण ने ऐसे समय में अवतरित हो कर अपना सन्देश दिया जब शोपनहावर और नीत्से के दर्शन के प्रभाव में तथा डारविन के वैज्ञानिक जड़वाद की उन्नति के समय भगवान और धर्म दोनों आधुनिक 'मानव' के मन से तिरस्कृत हो रहे थे। ऐसे समय श्रीरामकृष्ण ने भगवान की सत्यता को सिद्ध किया तथा भगवद् साक्षात्कार और स्वयं की दिव्यता को प्रकाशित करना मनुष्य जीवन का चरम उद्देश्य बताया।

श्रीरामकृष्ण ऐसे समय में अवतीर्ण हुए जब मैकाले के प्रभाव से साठ प्रतिशत से अधिक भारतीय शिक्षित युवकों ने हिन्दू धर्म को अंध-विश्वास तथा मूर्ति पूजा का धर्म मान कर त्याग दिया था। उसी मूर्ति पूजा के माध्यम से, जगन्माता काली की पूजा से, श्रीरामकृष्ण आध्यात्मिक शक्ति की उच्चतम ऊँचाई तक उठे और उस समय के अत्याधुनिक पाश्चात्य मस्तिष्कों को वैदिक धर्म के गम्भीर संदेशों की ओर आकर्षित किया, जिसका वे उपदेश करते थे।

श्रीरामकृष्ण के वे कौन से सन्देश थे?

(१) प्रत्येक जीवात्मा की दिव्यता और सभी धर्मों की मूलभूत एकता।

(२) अपनी अभूतपूर्व आध्यात्मिक साधना के द्वारा, श्रीरामकृष्ण ने ईश्वर प्राप्ति के सभी मार्गों की साधना की, जिसमें सूफी-इस्लाम और ईसाई धर्म की साधना भी सम्मिलित है। उन्होंने अनु-

भव किया कि ये सभी रास्ते बाहर और भीतर भगवद् दर्शन के लिए उपयुक्त हैं। अपनी युवा धर्म पत्नी श्री सारदा देवी के साथ अभूतपूर्व पवित्रता के साथ जीवन यापन किया तथा उनकी जगन्माता काली के रूप में पूजा की। इस प्रकार स्त्री जाति को आध्यात्मिक गुरु की ऊँचाई तक ले गये जिससे समाज शिक्षित और पवित्र हुआ।

अपनी अभूतपूर्व पवित्रता और महान आध्यात्मिक शक्ति के बावजूद श्रीरामकृष्ण ने जनसामान्य को, मित्रों को, पापियों को स्वीकारा और गले लगाया और उनको मानवीय कुशलता और दिव्यता की ऊँचाई तक ले गये। महान रूसी चित्रकार निकोलस डे रोरिच श्रीरामकृष्ण से प्रभावित हुए और कहा—श्रीरामकृष्ण अच्छे हैं क्योंकि उन्होंने कभी कुछ नष्ट नहीं किया, कभी किसी का त्याग या तिरस्कार नहीं किया। उन्होंने सबको, सब कुछ स्वीकार किया। उन्होंने उन सभी को जो उनके सम्पर्क में आये ऊँचा उठाया। यद्यपि वे सब समय भगबद् भाव में लीन रहते थे, फिर भी वे जीवन के सभी कार्यों, छोटे से छोटे कार्यों को मनुष्य में भगवान की सेवा समझ कर करते थे और इस प्रकार प्राचीन स्थिर धर्म को गतिशील किया जिससे सामान्य जनता की प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति हुई।

आज, जबकि धर्मों के भीतर की प्रतिद्वन्द्विता संसार को तीसरे विश्वयुद्ध की ओर ले जा रही है, जब कि कार्ल सागन के अनुसार तीसरा विश्व युद्ध आधे दिन में समाप्त हो जाएगा और जिसकी तीव्रता प्रति सेकेण्ड द्वितीय विश्वयुद्ध के बराबर होगी। नोबेल प्राइज विजेता, प्रसिद्ध इतिहासकार श्री अरनाल्ड जे० टोयेनबी इन थर्मोन्यूक्लीयर एज में सुरक्षित रहने का एकमात्र रास्ता श्रीरामकृष्णदेव के उपदेश में पाते हैं।

अपने गुरु श्रीरामकृष्ण के पदचिह्नों पर चलते हुए स्वामी विवेकानन्द ने धर्म को गतिशील, वेदान्त को प्रैक्टिकल, और सभी सांसारिक कार्यों को पवित्र पूजा बना दिया। उन्होंने जन सामान्य को प्रगति का रास्ता दिखाया और तथाकथित निम्न जाति के लोगों को और स्त्रियों को सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक तथा आध्यात्मिक रूप से उन्नत किया। उनको उपनयन और संन्यास प्रदान कर उनके लिए उच्चतम आध्यात्मिक संस्कृति का मार्ग खोल दिया।

श्रीरामकृष्ण के बारे में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं :

श्रीरामकृष्ण जन सामान्य के उद्धारकर्त्ता, संसार की सभी स्त्रियों के रक्षक, संसार को अन्तर्धार्मिक घषण से बचाने वाले, और मानवता को भोगवाद की संस्कृति से बचाने वाले हैं।

आज श्रीरामकृष्ण, पूर्व और पश्चिम में, सभी जगह ईसा और बुद्ध की परिष्कृति के रूप में पूजे जाते हैं। जिनके जीवन और संदेश में आधुनिक मानव को सभ्यता की कुंजी प्राप्त हुई। जैसा कि रोमेन रोलैन्ड ने कहा है और लाखो लोग अनुभव कर रहे हैं कि भौतिक समृद्धि की परिपूर्णता की तुलना में आन्तरिक दिव्यता का प्रकटन अधिक शान्ति आनन्द और पूर्णता लाता है।

पवित्र बनने के प्रयास में यदि मर भी जाओ, तो क्या; सहस्र बार मृत्यु का स्वागत करो। हृदय न खोना। यदि अमृत न मिले, तो यह कोई कारण नहीं कि हम विष खा लें।

—स्वामी विवेकानन्द

लिंग पूजा का रहस्य

—डॉ० लालबाबू तिवारी

पूरे विश्व में सदा-सर्वदा भगवान् शिव की पूजा होती रही है। शिव आर्यों एवं अनार्यों सभी के देवता रहे हैं। पौर्वात्य एवं पाश्चात्य सभी देशों एवं क्षेत्रों में भगवान शिव की पूजा सदा होती रही है, बल्कि विश्व के सर्वमान्य देव के रूप में भगवान शिव ही प्रतिष्ठित हो रहे हैं। रोम और यूनान दोनों देशों में क्रमश: प्रियेपस एवं एवं फल्लुस के नाम से लिंग की अर्चा होती थी। मिस्र देश में हर और ईस की उपासना की प्रधानता रही है। चीन और जापान के साहित्यों में भी शिव की महत्ता बताकर पूजन को बात की गयी है। अमरीका महाद्वीप में भी शिव के लिंग की पूजा होती थी।

भगवान शिव सर्वोपरि और सार्वकालिक देवता हैं। भगवान शिव हमारे वैदिक देवता हैं और वेदों में भगवान शिव का वर्णन प्रमुख रूप से किया गया है। श्वेताश्वेतर उपनिषद में कहा गया है—एकोरुद्रो न द्वितीयाय चस्थुर्य इमॉल्लोकानीशत ईशनीभिः । प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तिकाले संसृज्य विश्वाभुवनानि गोपाः

(श्वेताश्वेतर 3/2)

समस्त भुवनों को अपनी ईश शक्ति से ईशन करते हुए सबमें विराजमान शिव ही अंत में सबका संहार करते हैं। बस वही परमतत्व सर्वस्व है, उनसे भिन्न दूसरी वस्तु थी ही नहीं। इस भुवन के स्वामी रुद्रदेव से उनकी महाशक्ति पृथक नहीं हो सकती।

अब भक्तों की जिज्ञासा है शिव-लिङ्ग की पूजा क्यों होती है ?

यूं तो भगवान शिव गुणातीत, रूपातीत सर्वसंहारक, जगत्स्रष्टा है। अव्यक्त से तेजोमय, ज्योतिर्मय तत्व आभिर्भूत होता है। वह स्वयं उत्पन्न होने से स्वयम्भू लिङ्ग है। लिंग को एक प्रकार से चिह्न भी कहते हैं। चिह्न शून्य निर्गुण, निराकार, निर्विकार ब्रह्म अलिंग है। श्रुति द्वारा उसे अशब्द, अस्पर्श, अरूप बताया गया है, लेकिन वही अव्यक्त तत्व जगत-रक्षार्थ लिंग रूप धारण करता है।

माया द्वारा एक ही परब्रह्म परमात्मा से ब्रह्मादि लिङ्ग रूप का प्रादुर्भाव होता है। अव्यक्तावस्था को अलिङ्गावस्था कहा गया है लेकिन प्रकट होने पर इसे परिचायक होने के कारण लिंग कहा जाता है।

परब्रह्म परमात्मा की माया से ही ब्रह्मांड रूप लिंग का प्रादुर्भाव होता है। चौबीस प्रकृति-विकृति, पचीसवां पुरुष, छब्बीसवां ईश्वर यह सब लिङ्ग ही है। उसी से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, त्रिदेव सत, रज, तम त्रिगुण आदि का प्रादुर्भाव होता है। प्रकृति में स्थित निर्विकार बोध रूप शिवतत्व ही लिङ्ग है। इसी को विश्व तैजस प्राज्ञ, विराट् हिरण्यगर्भ, वैश्वानर, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति, ऋक्-साम-यजु, परा-पश्यन्ती-मध्यमा आदि त्रिकोणपीठों में तुरीय, प्रणव, परावाक्-स्वरूप लिङ्ग-रूप जानना चाहिए।

लिङ्ग भग से ही समस्त विश्व की उत्पत्ति है। अतः इसे विश्व का मूल जानना चाहिए। साधारण काम और भोग नहीं जानना चाहिए। देवों में महादेव ही हैं, जिन्होंने कामदेव को जलाकर भस्म किया था, हलाहल को कंठ में रखकर देवों की रक्षा की थी और वृद्धा होकर भी तरुण रूप में पार्वती से विवाह किया था।

समष्टि ब्रह्म का प्रकृति की ओर झुकाव अधिदैविक काम है। परन्तु जहाँ शुद्ध सच्चिदानंदघन परब्रह्म का स्वरूप में ही आकर्षण है वह निरुपाधिक प्रेम है और वही शुद्ध काम है।

गीता में भी कहा गया है—सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः। तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता। समस्त प्राणियों में जितनी वस्तुएँ उत्पन्न होती है उनकी सबकी योनि अर्थात् उत्पन्न करने वाली माता प्रकृति है और मैं बीज देने वाला पिता अर्थात् शिव हूँ।

पुनः कहा गया है—योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन गर्भं दधाम्यहम्। संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत। भगवान कहते हैं महद्ब्रह्म प्रकृति मेरी योनि है, उसी में मैं गर्भाधान करता हूँ तभी उससे समस्त प्रजा उत्पन्न होती है।

इस तरह निराकार, निर्विकार, व्यापक पुरुषतत्व ही लिङ्ग है और महाशक्ति प्रकृति ही योनि या जलहरी है। पुरुष कुटस्थ है तथा प्रकृति जड़ है। अतः सृष्टि के लिए प्रकृति और पुरुष का संबंध अपेक्षित है, उसी का मूल रूप लिङ्ग पूजा है।

यह स्पष्ट है कि समस्त योनियों का समष्टि रूप प्रकृति है, वही शिवलिंग का पीठ या जलढरी है। योनि में प्रतिष्ठित लिंग आनन्द प्रधान तथा आनन्दमय होता है। यह आनन्द का आधार शुद्ध ब्रह्म है तथा समष्टि योनि अनन्त ब्रह्माण्डोत्पादिनी भक्ति प्रकृति है तथा अनन्त ब्रह्मांड नामक परमात्मा ही समष्टि लिंग है। अतः लिंग पूजन के द्वारा उत्पत्ति और फलन का प्रारूप प्रवर्तित होता है। पुनः महालिंग के रूप में आकाश और योनि के रूप में पृथ्वी है, जो विश्व को प्रादुर्भूत कर संचरण की क्रिया को जागृत करते हैं।

शिवपुराण में लिखा है कि एक ही शिव ब्रह्म स्वरूप होने से निष्फल हैं, दूसरे देव सभी रूपी होने से सकल कहे जाते हैं। निष्कल होने से शिव के निराकार (आकार विशेष शून्य) लिंग ही पूज्य होता है। शिव सकल और निष्कल दोनों रूपों में पूज्य हैं लेकिन अन्य देवता नहीं।

शिव यद्यपि शुद्ध दार्शनिक और आध्यात्मिक रूप से अनादि हैं, फिर भी भिन्न भिन्न कालों में उनकी उपासना भी भिन्न-भिन्न रूपों में की जाती है। समष्टि प्रजनन भक्ति संपन्न शिवतत्व ही समष्टि लिंग है।

मुख्यो भगस्तु प्रकृति भगवान् शिव उच्यते।
भगवान भोगदाता हि नान्यो भोगप्रदायकः॥

भग के सहित लिंग और लिंग के सहित भग पूजित होकर इहलोक परलोक में विविध सुख देने वाला है। सदाशिव से उत्पन्न चैतन्य भक्ति द्वारा जायमान आदि पुरुष ही शिवलिंग है। समस्त पीठ अम्बामय है, लिंग चिन्मय है, भगवान शंकर कहते हैं कि जो संसार के मूल कारण महाचैतन्य को और लोक को लिंगात्मक जानकर लिंग पूजा करता है, मुझे इससे प्रिय दूसरा कोई नहीं।

लोकं लिंगात्मकं ज्ञात्वा लिंगे योऽर्चयतेहिमाम
नमे तस्मात्प्रियतः प्रियो वा विधते क्वचित्

भिन्न-भिन्न कामना से शिवलिंग के पूजन विधान भी भिन्न-भिन्न है।

अब उत्सुकता होती है कि महाशिवरात्रि भगवान शिव के लिए विशेष प्रिय क्यों है, जिस दिन भक्त बड़ी श्रद्धा और भक्ति से उनकी उपासना करते हैं?

जिसमें सारा जगत शयन करता है जो विकार रहित, वही शिव है तथा 'रा' दानार्थक धातु से रात्रि शब्द बनता है अर्थात् जो सुखादि प्रदान करती है वही रात्रि है। ऋग्वेद में कहा गया है—

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्त मास्थत। उपऋणेव चातय। (ऋग्वेद रा. सू. 90/926/6) हे रात्रि। अश्लिष्ट जो तम है वह हमारे पास नहीं आवे। इस प्रकार रात्रि सदा आनन्ददायिनी है तथा रात्रि शब्द से प्रकृति, दुर्गा, शिव देवी की उपासना जानना चाहिए। अतः शिवरात्रि व्रत परात्पर है। जो जीव इस दिन परमशिव की पूजा करता है उसका जीवन धन्य होता है। फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी का महत्व ऐसे भी है कि उसके बाद वर्ष समाप्त होकर नववर्ष आता है। अतः उसके पूर्व भगवान शिव की पूजा जीवन को सफल करती है।

ईशान संहिता के अनुसार इसी दिन रात में शिव की प्रथम लिंग मूर्ति उत्पन्न हुई थी। अत: इसे महारात्रि रूप में उपासना करके भक्त सफल होते हैं।

इस प्रकार महाशिवरात्रि के पूजन से हमें धर्मार्थ काम-मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(हिन्दुस्तान, पटना से साभार)

स्वामी ब्रह्मानन्द के आध्यात्मिक उपदेश

संकलन कर्त्ता—श्री पी० शेषाद्रि अय्यर

अनुवादक—बसंत विवेक सागर

[रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के प्रथम संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज के निम्नोक्त आध्यात्मिक उपदेशों का संकलन "Spiritual Precepts of Swami Brahmananda" शीर्षक से केरल राज्य के पूर्व पुस्तकालयाध्यक्ष श्री पी० शेषाद्रि अय्यर ने किया था। वे स्वयं स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज के मंत्र शिष्य थे तथा दक्षिण भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती पंजाबी, अँग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन आदि भाषाओं के भी विशेष ज्ञाता थे। उनके १९६८ ई० में शरीर-त्याग के पूर्व ही प्रो० एन० एस० वासुदेव राव वम्बई ने उनसे यह निबन्ध प्राप्त किया था जो अब तक अप्रकाशित रहा। प्रो० राव से यह निबन्ध रामकृष्ण मठ, नागपुर के वरिष्ठ साधु स्वामी मोक्षानन्द जी महाराज को प्राप्त हुआ जिन्होंने 'विवेक शिखा' में इसे प्रकाशनार्थ भेजने की कृपा की। विवेक शिखा के पाठकों के लिए यह विशेष लेख हम प्रसन्नता पूर्वक प्रकाशित कर रहे हैं। इसके अनुवादक हैं—श्री वसन्त विवेक सागर, छपरा। —सं०]

ईश्वर में विश्वास या अपने वास्तविक स्वरूप से भिज्ञ होने की तीव्र इच्छा, आध्यात्मिक जीवन का प्रथम चरण है। इस ब्रह्मांड के मूल सिद्धांतों, जो इसके मूल आधार हैं, की खोज के लिए अपना तन-मन समर्पित करना साधना का प्राथमिक कदम है। कहाँ से यह ब्रह्मांड आया? इसका कारण क्या है? इस समस्या का समाधान करने के लिए ही मनुष्य का जन्म हुआ है। मानव-शरीर प्राप्ति के पश्चात, जो आत्मज्ञान के लिए उत्कट लालसा नहीं रखता एवं भौतिक सुखों में डूब जाता है, उसका जीवन व्यर्थ है। केवल उसी ने अपने जीवन के उद्देश्य को पहचाना है, जिसने

अपनी पाशविक प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त कर अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

मानव जाति का एक बड़ा भाग ऐन्द्रिय सुखों के अंधानुसरण में शामिल है। बहुत कम लोग ही भगवान के बारे में जानने की चेष्टा करते हैं। बिरले ही, लाखों में कोई एक, ऐसा व्यक्ति होता है। अनेक लोग तो व्यापक पूजा एवं यन्त्र-तन्त्र तीर्थाटन कर, वस्तुतः धर्म का दिखावा ही करते हैं। शायद ही इनमें से कोई एक ऐसा होता है, जो असली आध्यात्मिकता के बारे में जिज्ञासा रखता हो। केवल उसी व्यक्ति ने साधना के पथ पर कदम रखा है, जिसे धर्म के सत्य को जानने की आंतरिक ललक है एवं जो आत्मज्ञान के लिए लालायित होता है। शेष व्यक्ति तो केवल धर्म की बातें करते हैं। आध्यात्मिकता के लिए सच्ची लालसा अभी उनके मन में प्रकट नहीं हुई है। उनके धार्मिक रिवाज केवल दिखावा है, बाह्य आडंबर हैं।

भगवान में सच्चा विश्वास रखना बहुत ही कठिन कार्य है। कितने कम हैं वे जिन्हें सच्चा विश्वास है, इस प्रकार का। हमें श्रवणमात्र या ग्रंथों के अध्ययनमात्र द्वारा सच्ची भगवत्श्रद्धा की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसकी प्राप्ति केवल एक सच्चे हृदय वाला व्यक्ति कर सकता है। यह प्रत्यक्ष अनुभव की बात है एवं बौद्धिक तर्कों एवं चर्चाओं द्वारा नहीं पाया जा सकता। हमें कम से कम अपनी आत्मा में ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव करना चाहिए, तभी प्रभु में सच्चा विश्वास प्रकट होगा। विश्वास एव भक्ति आन्तरिक बातें हैं। अगर मानसिकरूपेण एवं दिल से शुद्ध नहीं है, तो कोई आपमें विश्वास नहीं रखेगा। अगर आपने अच्छे संस्कारों के साथ जन्म नहीं लिया है, तो आप सच्ची श्रद्धा एवं भक्ति नहीं प्राप्त कर सकते।

"हे हरि! हे भगवान!" आदि चिल्लाने से लाभ क्या है? आपको अपने हृदय में भगवान का अनुभव करना चाहिए और तभी आप उनके अस्तित्व का सच्चा विश्वास कर पाएँगे।

जब तक चित्त शुद्ध नहीं होगा, तब तक भगवान में हमारी सच्ची श्रद्धा नहीं आ सकती। माला जपने जैसे बाह्य आडंबर किसी काम के नहीं। अहम्कार, दिखावा, ऐन्द्रिय सुखों की लालसा, ऐसी गन्दगियाँ हमारे मन में भरी में भरी हुई हैं। तब यह मन भगवान की ओर कैसे मुड़ सकता है? मिथ्याचार द्वारा आप भगवान नहीं प्राप्त कर सकते। इस पथ पर लोकप्रिय आचार-विचारों का प्रयोग भी किसी काम का नहीं। हमें ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि हमारा मन सर्वदा भगवद्-चिन्तन में लगा रहे। साधना की एक मुख्य बात है, भगवद्-प्रेम, चिंतन तथा ध्यान-प्रार्थना में डूबा रहना। ऐसा करने के जगह, अगर आप बेमतलब की रुढ़ियों की संकीर्णता में जकड़े हुए हैं, तो आप कभी भगवद् प्राप्ति नहीं कर सकते या आध्यात्म के क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सकते।

सच्ची श्रद्धा एवं भक्ति तभी आएगी, जब मानव इस बात को महसूस करे कि केवल परमात्मा ही सत्य हैं। उनके दर्शन करो एवं तभी तुम्हें यह विश्वास होगा कि उनका अस्तित्व है। सच्चे दर्शन के बिना तुम्हारी श्रद्धा एवं भक्ति क्षणभंगुर ही रहेंगी। भगवान में इसलिए विश्वास करना कि साधु-संत उन पर विश्वास करते हैं, साधना के द्वारा उनको प्राप्त करने के पश्चात उनपर विश्वास करना दूसरी बात हुई। इन दो प्रकार के विश्वासों में जमीन-आसमान का अंतर है। न जाने कितने जप, संध्या आदि कर रहे हैं पर क्या वे सचमुच गंभीर हैं। उनमें भगवद् प्राप्ति का रत्ती भर सद्भाव नहीं है। अंध-अन्तः-प्रेरणा

या क्षणिक भावनाएँ आत्मनिग्रह या भगवत् श्रद्धा नहीं ला सकती।

शुरुआत में मन अपने इष्ट-देवता के ध्यान प्रार्थना पर स्थिर नहीं रहेगा। अनेक बेकार बातें इस कार्य में बाधा डालेंगी। आपको इस बारे में चिंतित होने की कोई आवश्यकता नहीं। आपका मन कितना भी अस्थिर क्यों न हो, ध्यान करना मत छोड़िए। मन को सर्वदा इष्ट-देवता पर एकाग्र करने की कोशिश करें। आपको यह क्रम महीनों तक जारी रखना होगा। अगर आप अपने इस कार्य में निष्कपट हैं, तो आपका मन बहुत जल्द ही आपकी मुट्ठी में आ जाएगा।

जप के प्रारंभिक चरणों में यदि मन शांत नहीं रहता, तो आँखें खोलकर अपने इष्ट देवता को देखते हुए ही यह कार्य कीजिए। उस तस्वीर पर अपनी आँखें केन्द्रित कर प्रार्थना या श्लोकोच्चारण कीजिए। इस प्रकार मन शनैः-शनैः शांत हो जाएगा। तब, जप शुरू करें। अगर आप इस प्रकार जप करें तो मन पूर्वानुसार चंचल नहीं रहेगा। तब आप आराम से आँखें बन्द कर जप कर सकते हैं। अब आपको ऐसा करने में अधिक बाधाएँ नहीं आएँगी। अगर आप यह कार्य ५ से ६ महीनों तक करें तो आप ऐसा पाएँगे कि जप सहज हो गया है।

जप या ध्यान किसी भी या प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष न करें। अगर आप अशुद्ध एवं चंचल मन वाले व्यक्तियों के संग ऐसा करेंगे, आपकी साधना में बाधाएँ आएंगीं, क्योंकि उनके मन से उत्पन्न अशुद्ध तरंगें आपकी एकाग्रता पर असर डालेंगी। साधना के मार्ग पर एक अच्छा साथी प्राप्त करना सचमुच अत्यंत कठिन हैं। व्यर्थ विचारों वाले व्यक्ति के साथ साधना करने पर आपमें न्यूनतम एकाग्रता भी नहीं आएगी एवं आप ध्यान नहीं कर पाएँगे। इसलिए एक एकांत स्थान पर जाकर अकेलेपन में साधना करना ही सर्वोत्तम है।

आपको प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल में कुछ समय साधना को समर्पित करना चाहिए। तब ही वास्तव में आप इस पथ पर कुछ प्रगति करेंगे। नियमित अभ्यास समय पर पल्लवित-पुष्पित होगा। अगर आप सूर्योदय के दो घंटे पूर्व जागकर जप करें, तो ऐसा करने में मन को एकाग्र करने के लिए बहुत कम कठिनाई होगी। उस समय शुद्धता की एक शुद्ध हवा चलती रहती है। प्रातः एवं सायंकाल दोनों समय दो घंटे जप करिए। अगर आप युवावस्था की इस आयु में यह नहीं करेंगे, तो कब करेंगे? तीस की उम्र के बाद, साधना करने की शक्ति क्षय होती जायेगी। जो तुम चाहते हो उसे, इसके पूर्व प्राप्त कर लो। अन्यथा, तुम्हें रिक्त हस्त के साथ लौटना पड़ेगा।

जप के समय, पहले आपको अपने इष्ट देवता का परिशुद्ध चित्र प्राप्त करना होगा। अगर आप उनके चित्र को अपने मानस-पटल पर नहीं ला पा रहे हैं, आप उनके बाह्य-चित्र को देखते हुए, मंत्रोच्चारणादि कीजिए। केवल मंत्रोच्चारण से कुछ नहीं होने वाला। आप उस मंत्र के अर्थ पर ध्यान करिए एवं अपने इष्ट-देवता पर मन को एकाग्र कीजिए। प्रारंभ में, मन इष्ट देवता के अवलोकन में चंचल ही रहेगा, इसलिए इस कार्य को करने के लिए कुछ आसान मार्ग भी अपनाने चाहिए। उदाहरणार्थ, आप सोच सकते हैं कि अत्यंत प्रकाशमान इष्ट देवता, दयामयरूपेण आपकी तरफ देखते हुए, आपकी प्रार्थनाओं का श्रवण कर रहे हैं। सोचिए कि इष्ट देवता आपके काफी नजदीक हैं। सर्वदा सोचिए कि वे सर्वदा आपके समीप हैं एवं आपकी सभी बातों को सुन रहे हैं। अगर ऐसी सोच सचमुच रोपित हो जाएगी तो आपका मन स्थिर एवं एकाग्र रहेगा।

जब भी दिन में समय मिले, इष्ट देवता की साधना में उसे समर्पित कर देना चाहिए। सर्वदा उनका चिन्तन-मनन करना अत्यावश्यक है। इससे मन जप-ध्यान के समय स्थिर रहेगा।

आपको अपने हृदय-कमल में अपने इष्ट-देवता का ध्यान करना चाहिए। अपने अन्तस्तल में आपको सर्वदा सर्व-प्रकाशमान आराध्य के अस्तित्व के बारे में सोचना चाहिए। सम्पूर्ण रूप का चिन्तन करो, यह तो थोड़ा कठिन है, इसलिए सर्वप्रथम केवल उनके चेहरे का स्मरण करना चाहिए। जो यह भी करना कठिन पाते हैं, उन्हें प्रभु की लीलाओं का स्मरण करना चाहिए, तब उस समय उनका मन स्थिर हो जाएगा। जप के समय अपने आराध्य की लीलाओं का स्मरण कर हम अपने मन को स्थिर कर सकते हैं। उदाहरण स्वरूप, अगर कृष्ण आपके इष्ट देवता हैं, तो आप कंस-मर्दन या अर्जुन को उनके द्वारा गीतोपदेश आदि का स्मरण कर सकते हैं। अगर आप ऐसा करेंगे तो शनैः-शनैः मन स्थिर शांत एवं एकाग्र हो जाएगा।

इस बात का सर्वदा ध्यान रखें कि फालतू चिन्तन आपके मन में प्रविष्ट होकर आपको आराध्य को भक्ति के मार्ग से पथभ्रष्ट न कर दें। जब भी ऐसा हो, तो अपने इष्ट-देवता का ध्यान करें। इस प्रकार बुरे विचारों को पस्त कर दें। ऐसे लगातार प्रयास से अच्छी आदतें बनेंगी। तब बिना अतिरिक्त श्रम के मन इष्ट देवता पर केंद्रित हो जाएगा। अगर आप में सच्ची लालसा एवं सच्चा उत्साह है, तो आप खुद में ऐसे संस्कार पाँच से छः वर्ष में प्रबुद्ध कर सकेंगे। अगर यह संस्कार कुछ और अच्छी तरह प्रविष्ट हो जाए, तो इष्ट-देवता के प्रति निष्ठा बढ़ जायेगी।

अगर आप नियमित साधना करने के इच्छुक हैं, तो योग कीजिए। लेकिन योग करने में सक्षम कितने कम व्यक्ति हैं। योगाभ्यास करने में सक्षम व्यक्ति बिल्कुल अलग ही साँचे में ढला होता है। ऐसी स्थिति को प्राप्त होनेवाले के कई जन्मों के संस्कार उपयोगी होते हैं। क्या सभी लगातार आठ से दस घंटों तक ध्यान करना वहन कर सकते हैं? इस कारण सभी स्नायु एवं मस्तिष्क पर असह्य तनाव डालेगा। क्या मन का पूर्णरूपेण नियंत्रित कर लेना मजाक है। योग साधना के लिए व्यक्ति को ऐन्द्रिय सुखों, लालसाओं एवं आसक्तियों में डूबना नहीं चाहिए। वह सर्द-गर्म सह सकता हो, शांत दिमाग वाला हो, स्पष्ट तथा शांत हो। उसे हृष्ट-पुष्ट शरीर वाला होना चाहिए एवं भोजन, वार्तालाप एवं शयन पर नियंत्रण रखना चाहिए। कमजोर स्नायु वाले भावुक एवं असंतुलित व्यक्तियों के लिए राजयोग का अभ्यास करना उचित नहीं। कमजोर व्यक्तियों के लिए राजयोग का अभ्यास खतरनाक सिद्ध हो सकता है। या तो वे पागल हो जाएंगे या ऐसे रोग का शिकार बनेंगे, जो उनकी अकाल मृत्यु का कारण बनेगा। इसीलिए, साधारणतः मैं राजयोग के अभ्यास की बात नहीं करता एवं जप, प्रार्थना और ध्यान की प्रक्रिया समझाता हूँ।

प्रथमतः, मन को स्थिर होने दें, तब आप ध्यान कर सकते हैं। क्या मन चंद महीनों के अभ्यास द्वारा स्थिर हो सकता है? मन को नियंत्रित कर लेने में वर्षों लग सकते हैं। भोजन-शयन-वाचन पर कठोर नियंत्रण होना चाहिए। इस क्रम में मन शुद्ध हो जायेगा। मन में शुद्धता न होने पर हम कैसे ध्यान कर सकते हैं? इसमें कई जन्मों के बुरे संस्कार संचित रहते हैं। अगर पूरा दिन बेकार के वार्तालाप एवं मटरगश्ती में लगा दिया जाय, तो मन कैसे शान्त रह सकता है। यह तो सर्वदा अशांत एवं अस्थिर हो रहता है। आपका मन तब तक अस्थिर ही रहेगा, जब

तक आप एकांत में रहने के अभ्यस्त नहीं हो जाते। अन्यथा आपका ध्यान करना व्यर्थ ही रहेगा।

सभी को प्राणायाम का अभ्यास करना उचित नहीं है। इसका अभ्यास केवल एक हृष्ट-पुष्ट शरीर नियंत्रित मन एवं बलवान हृदय वाला व्यक्ति ही कर सकता है। अगर आपमें उपर्युक्त बातें हों, तब भी प्राणायाम का खुद ही अभ्यास करना अच्छा नहीं। एक गुरु की उपस्थिति में इसका अभ्यास करना अच्छा रहेगा, क्योंकि अगर इस क्रम में कोई गड़बड़ी हो. तो वह उसे ठीक कर सकता है। प्राणायाम का अर्थ है, प्राण को अपने नियंत्रण में लाना। गुरु की अनुपस्थिति में प्राणायाम का अभ्यास करना जानलेवा तक भी हो सकता है। हठयौगिक अभ्यास अत्यंत खतर-नाक होते हैं। आध्यात्म के पथ पर, केवल अत्युन्नत व्यक्ति ही, प्राणायाम को सही रूप में कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त इसका अभ्यास किसी ऐसे स्थान पर करना चाहिए, जिसका वातावरण (मौसम) अत्युत्तम हो। दूध, मक्खन, फल इत्यादि पौष्टिक आहारों का सेवन करना चाहिए। भारत जैसे देश जो कि गरीब हैं, में यह व्यावहारिक नहीं हो सकता। राजयोग के अभ्यास के क्रम में चावल या सब्जी ग्रहण करना फेंफड़ों को हानि पहुँचाता है। इसलिए इन दोनों का सेवन करने से कोई भी राजयोगी दमा आदि का शिकार बन सकता है। किसी बदबूदार स्थान पर इसका अभ्यास न करें। काशी, हरिद्वार, पुरी, भुवनेश्वर इत्यादि जगहों पर आध्यात्मिक माहौल है। ऐसी जगहों में कई ऐसे एकांत स्थल है, जो साधना के लिए अति उपयुक्त हैं। अगर आप ऐसे स्थलों पर साधना करते हैं, तो मन स्थिर रहेगा एवं इस कार्य में आपको अधिक हर्ष का अनुभव होगा।

किसी भी तरह मन को स्थिर करना ही लक्ष्य है। प्राणायाम का अभ्यास करना कोई जरूरी नहीं है। अगर आप में उत्कट इच्छा हो एवं आपका मन पवित्र हो तो ध्यान करने को कोई अधिक आवश्यकता नहीं है। प्राणायाम आपका लक्ष्य नहीं है, यह साधना करने का एक मार्ग मात्र है। इष्ट देवता का चिंतन-मनन करना ही एकमात्र जरूरत है। अगर आप में आंतरिक पवित्रता है तो मन खुद-ब-खुद एकाग्र हो जायेगा।

साधना के शुरुआती दौर में मन चंचल रहेगा। इसलिए ऐसा होने पर साहस नहीं खोना चाहिए। दृढ़ निश्चय से कोई भी कार्य असंभव नहीं। वही मन जो अभी चंचल है, दैनिक प्रयास द्वारा ध्यान करने को उत्सुक रहेगा। आत्मविश्वास रखिए। दिल से प्रभु की प्रार्थना कीजिए। जितनी अच्छी तरह आप साधना कर सकते हैं, उतनी ही अच्छी तरह करिये। अगर आप में भगवद्प्राप्ति की सच्ची अभिलाषा है, तो सारी बाधाएँ स्वतः दूर हो जाएँगी। प्रभु सर्वदा आपके साथ रहेंगे। आपको केवल उन पर ध्यान लगाना है।

इस बात का सर्वदा ध्यान रखें कि आप जहाँ ध्यान करते हों, वहाँ कोई भी बेकार वार्त्तालाप न हो। वर्ना वह स्थल दूषित हो जायेगा। सभी प्रकार के बेकार, व्यर्थ विचार उस स्थल पर उत्पन्न होते रहेंगे। एकांत में साधना करना ही सर्वोत्तम है। अगर साधना के लिए एक कमरा हो तो अच्छा रहेगा। वहाँ पर केवल आसन तथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक पुस्तकें रखें। अगरबत्ती द्वारा कमरे को सुगंध से भर दें।

जब भी आप उस कमरे में प्रवेश करें तो इष्ट देवता का ध्यान या श्लोकोच्चारण आदि करें। अन्य किसी बात को न सोचें। किसी को वहाँ प्रवेश न करने दें। अगर आप उस कमरे के

वातावरण को इसी प्रकार एक वर्ष तक नियंत्रित रखें, तो वह स्थान पूरी तरह बदल जायेगा। तब आपमें सर्वदा भगवद् विचार ही आयेंगे एवं उस कमरे में प्रवेश करते ही ध्यान करने की इच्छा प्रगट होना आम बात हो जायेगी। कुछ वर्षों में सद्विचार से वह स्थल आप्लावित हो जायेगा। यही कारण है कि किसी धार्मिक स्थान पर हमें अपूर्व आध्यात्मिक उत्कर्षण का बोध होता है। क्योंकि वह स्थल वहाँ रहने वाले संन्यासियों एवं योगियों के पुण्य-प्रताप से प्लावित रहता है।

कुछ भी एक दिन में नहीं प्राप्त किया जा सकता। महीनों के अभ्यास के बावजूद आपको ऐसा लगेगा कि आपने कुछ भी उन्नति नहीं की। अनेक बुरे विचार आपके मन में पड़े हैं। अगर अच्छे विचारों का वास रहे तो ये घट जाएंगे। आप मन के अस्थिर होने के कारण निराशा में हैं। एक समय ऐसा आयेगा कि अच्छे विचारों के कारण मन ध्यान के अलावा किसी कार्य में नहीं लगेगा। अपना कार्य जोर-शोर से करें। कुछ समय में आप अन्तर्मन को थोड़ा-थोड़ा पहचान पायेंगे। और चार-पाँच वर्षों में भगवद्प्राप्ति हो जायेगी। सारी बातें आपकी आध्यात्मिक अनुभवों की गहराई एवं सद्भाव पर निर्भर हैं। जो सुयोग्य अधिकारी होगा, वह मंत्र-दीक्षा के पश्चात् ही समाधि-भाव प्राप्त कर लेगा। यह कोई स्वप्न नहीं, सच्चाई है।

जिसने ध्यान के स्वाद को पहचान लिया, वह नाम-प्रसिद्धि के पीछे नहीं पड़ेगा। क्या सामुद्रिक मछली तालाब-जल में रहना पसन्द करेगी ?

ध्यान के समय एक को छोड़कर सारे विचार मन से निकल जाएंगें। जो विचार रहेगा वह होगा भगवान का, आत्मा का। उस समय हम बाह्य संसार को भूल जाएँगे। हम अपने अन्तर-आत्मा के बारे में सोचेंगे। तब शायद अनंत सत्ता से हम थोड़ा भिन्न होंगे। आप तब एक वर्णनातीत अवस्था में पहुँच जाएँगे। आप हमेशा वैसे ही रहने की इच्छा करेंगे।

ऐसी अवस्था में डूब जाने के बाद मन इन्द्रियों के परे चला जायेगा। तब वह पूर्णतः पवित्र हो जाएगा। केवल भगवान, अन्तरात्मा का ही विचार मन में रहेगा। तब हमारी आंतरिक सत्ता स्पष्ट हो जायेगी। तब भगवान से हम ठाकुर की तरह वार्त्तालाप कर सकेंगे। जीव ईश्वर में विलीन हो जाएगा और हम समाधिवस्था में चले जाएँगे। इससे ऊँची एक अन्य अवस्था भी है। तब जीव एवं ब्रह्म एक हो जाएँगें। तब असली समाधि होती है। यही आत्मस्वरूप का ज्ञान है।

प्रत्येक कर्मफल भले और बुरे का मिश्रण है। ऐसा कोई भी शुभ कर्म नहीं है, जिसमें अशुभ का संस्पर्श न हो। आग के चारों ओर व्याप्त धुएँ के समान कर्म में सदैव कुछ न कुछ अशुभ लगा ही रहता है। हमें ऐसे कार्यों में रत रहना चाहिए जिनमें भलाई अधिक से अधिक मात्रा में हो और बुराई कम से कम।

रिश्ते-नाते

स्वामी योगात्मानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन, शिलाँग

(मराठी मासिक 'जीवन-विकास' में प्रकाशित प्रस्तुत लेख में पुराण की एककथा के माध्यम से जीवन का अतीव सुन्दर विश्लेषण किया गया है। इसका हिन्दी अनुवाद नागपुर के श्री वा० म० लोहित ने किया है। --सं०)

"भद्रे, मेरा प्यारा मुन्ना बहुत देर से सोया हुआ है, उसे जरा मेरे पास तो ले आ"—रानी कृतद्युति ने दासी से कहा। दाई ने बालक के पास जाकर पाया कि वह हमेशा के लिए सो गया है। दुःख से दोनों हाथों से छाती पीटते हुए ढाढ़ें मारकर वह रोने लगी। सुनकर रानी कृतद्युति दौड़ती हुए वहाँ आयी और अपने लाडले पुत्र को दिवंगत हुआ देख असह्य शोक से मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ी। इतने में कोलाहल सुनकर राजप्रासाद के अन्य लोग भी भागकर वहाँ आ पहुँचे और इस घटना पर शोकाकुल हो गये। जब अपनी प्राणप्रिय सन्तान के वियोग की हृदय-विदारक सूचना राजा चित्रकेतु के कानों तक पहुँची, तो उनकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। अपने मंत्रियों का सहारा लेते, लड़खड़ाते हुए वे भी किसी प्रकार वहाँ आये और मृत बालक के शव के पास पहुँचकर ढेर हो गये।

सर्वत्र एक साथ रुदन और हो-हल्ला मच गया।

वैसे राजा चित्रकेतु एक बड़े सम्पन्न और सुखी राजा थे। कमी थी तो केवल एक ही—अनेक रानियों के बावजूद उनकी कोई सन्तान न थी। अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ भी जिस प्रकार केवल नमक के अभाव से नीरस हो जाते हैं, उसी प्रकार सन्तान के अभाव में उनका सारा सुखपूर्ण जीवन उनके लिए अलोना हो गया था। ऐसी ही दुःखमय परिस्थिति में एक दिन ऋषि अंगिरा उनके यहाँ पधारे और उनका कुशलक्षेम पूछने लगे।

—"क्या बताऊँ ऋषिवर, आप तो सर्वज्ञ हैं सब कुछ जानते हैं, तथापि जब पूछ ही रहे हैं, तो मेरे लिए बताना आवश्यक है" ऐसा कहकर राजा ने अपने हृदय में चुभनेवाला शूल ऋषि के सामने प्रकट कर दिया। दयालु ऋषि ने राजा के द्वारा एक यज्ञ का अनुष्ठान कराया और उसका प्रसाद राजा की ज्येष्ठ, सद्गुण-सम्पन्न पत्नी कृतद्युति को खाने के लिए दे दिया।

—"राजन, अब रानी को एक पुत्र होगा, जो तुम्हें हर्ष तथा शोक दोनों ही प्रदान करेगा"—ऐसा कहकर ऋषि ने वहाँ से प्रस्थान किया। यथासमय रानी कृतद्युति ने एक सुन्दर पुत्र प्रसव किया। समाचार मिलते ही राज्य में सर्वत्र आनन्द उमड़ पड़ा। राजा-रानी के हर्ष का तो कोई पारा-वार ही न था। राजा ने पुत्र के कल्याणार्थ प्रचुर दान-धर्म किया। उसे लाड़-प्यार करने में राजा-रानी स्वयं को भी भूल गए। जिस तरह किसी निर्धन को बहुत मेहनत करने के बाद मिले हुए धन से प्रगाढ़ आसक्ति हो जाती है, उसी तरह

काफी प्रयासों से प्राप्त हुए इस पुत्र के साथ राजा को की भयंकर आसक्ति हो गई और यह दिनों-दिन बढ़ती भी गयी।

दूसरी ओर अपनी रानियों के प्रति उनका प्रेम कम होने लगा। मूलतः पुत्रहीन होने से शोक-सन्तप्त अन्य रानियों में इस कारण ईर्ष्या का संचार हुआ। वे तीव्र मत्सराग्नि में जलने लगी। उन्हें दिखने लगा कि इस नवागत बालक के कारण ही वे अब कृतद्युति की तुलना में हीनता को प्राप्त हुई हैं तथा राजा के स्नेह से भी वंचित हो गई हैं। अपनी इस दुरवस्था के कारण-स्वरूप इस बालक रूपी काँटे को निकाल फेंकने का निश्चय करके ईर्ष्याग्नि से विवेकहीन रानियों ने एक दिन उसे जहर देकर अपना नियोजित काम पूरा कर डाला था।

□ □ □

बालक के प्राणहीन शरीर को पकड़कर कृतद्युति जोर-जोर से विलाप कर रही थी। कभी वह परमेश्वर को दोष दे रही थी, तो कभी बालक को सम्बोधित कर बोल रही थी, "अरे लाड़ले, उठ! इन भयंकर यमदूतों के साथ मुझसे दूर मत जा। देख, तेरे पिताजी तेरे वियोग के कारण कैसे दुःख से मूर्छित हो गए हैं। देख, तेरे ये साथी तुझ अपने साथ खेलने के लिए बुला रहे हैं। और आज अभी तक तुझ भूख कैसे नहीं लगी? आ, मैं तुझे दूध पिलाती हूँ।" आदि आदि।

रानी का यह शोकाकुल रुदन सुनकर सभी उपस्थित लोगों के हृदय भी अभिभूत हो गये। सारे नगर पर मानो शोक की छाया उतर आयी। कौन किसे समझाए? सभी शोक-सागर में निमग्न थे। जब अंगिरा ऋषि को यह समाचार प्राप्त हुआ, तो वे भी देवर्षि नारद के साथ वहाँ आ पहुँचे और दुःखातिरेक से जड़वत् हुए चित्रकेतु को सान्त्वना देने लगे। उन्होंने कहा, "राजन, जिसके लिए तुम इतना शोक कर रहे हो वह बालक तुम्हारे पिछले जन्मों में कौन था? और भविष्य में आनेवाले जन्मों में भी उसका और तुम्हारा भला क्या सम्बन्ध रहने वाला है? जिस तरह जल के प्रभाव से बालू के कण एक-दूसरे के निकट आते हैं और फिर अलग हो जाते हैं, उसी तरह काल-प्रवाह में प्राणियों का भी संयोग-वियोग होता रहता है। हमें दिखनेवाले सारे चर-अचर पदार्थ न तो हमारे जन्म के पहले थे, और न मृत्यु के पश्चात ही रहेंगे, इसलिए वर्तमान में भी उनका अस्तित्व सत्य नहीं है। इसका कारण यह है कि सत्य कभी भी बदलता नहीं। राजन, जिस प्रकार एक बीज से धरती पर दूसरे बीज की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार पिता और माता के शरीर से पुत्र की उत्पत्ति होती है। उनका और जीवों का सम्बन्ध अविद्याकल्पित है।"

उनके इस प्रकार समझाने पर राजा को धीरे-धीरे बोध होने लगा। अंगिरा ऋषि आगे कहने लगे, "हे राजन, तुम भगवद्भक्त हो, इस प्रकार शोक करना तुम्हें शोभा नहीं देता। भूतकाल में जब तुम पुत्र के लिए आतुर हुए थे, तभी यह सारा ज्ञान मैं तुम्हें देनेवाला था, परन्तु पुत्र-प्राप्ति के लिए तुम्हारी अदम्य लालसा को देखते हुए मैंने तुम्हें पुत्र दिया। अब तो तुम स्वयं ही जान गए हो कि पुत्रवान को कितनी भयंकर यातनाएँ सहनी पड़ती है। जो बात पुत्र के सम्बन्ध में सत्य है, वही पत्नी, घर-बार आदि समस्त नामरूपात्मक वस्तुओं के सम्बन्ध में भी है—यह सब कुछ अनित्य ही है और इसके साथ ममत्व का फल घोर दुःख ही होगा।"

राजा के हृदय में यह बात—इस जगत की अनित्यता की धारणा और भी दृढ़तापूर्वक अंकित

करने के लिए देवर्षि नारद ने अपने योगबल के द्वारा चित्रकेतु के दिवंगत पुत्र की जीवात्मा को वहाँ बुलाया। उस जीवात्मा को सम्बोधित करते हुए वे बोले, "देखो, तुम्हारे बिछोह के कारण यह तुम्हारे माता-पिता, सगे-सम्बन्धी आदि किस तरह दुःख में डूब गए हैं। इसलिए तुम पुनः इस शरीर में आकर इन सबका शोक दूर करो। आकर अपने राजसुखों का भोग कर लो और आगे चलकर सिंहासन पर अधिष्ठित होकर राज्य चलाओ।"

परन्तु उस जीवात्मा को न केवल अपने माता-पिता के स्नेह का, अपितु उनके परिचय तक का भी पूर्ण विस्मरण हो गया था। वह कहने लगा, "देवर्षे, अपने कर्म की गति से मैं मनुष्य-पशु-पक्षी आदि शरीरों में से पता नहीं कितने काल से विचरण कर रहा हूँ। उनमें से ये लोग न जाने मेरे कौन से जन्म के माता-पिता और रिश्तेदार हैं! विभिन्न जन्मों में जीवों के विभिन्न माता-पिता और रिश्तेदार होते हैं और इस प्रकार मेरे असंख्य माता-पिता तथा शत्रु-मित्र हैं। जब तक 'मैं अमुक शरीर हूँ'— इस प्रकार का अभिनिवेश रहता है, तभी तक उस शरीर से सम्बन्धित माता-पिता आदि अन्य शरीरों के साथ उसे ममत्व का बोध होता रहता है। अन्यथा, स्वरूपतः जीव तो एकमेवाद्वितीय अनादि, अनंत, जन्म-मृत्यु से रहित, मुक्त-स्वभावी है। शरीर के सम्बन्ध अथवा गुण-दोष उसे स्पर्श नहीं कर सकते।" यह बताकर वह जीवात्मा अन्तर्धान हो गयी।

राजा चित्रकेतु तथा रानी कृतद्युति के साथ ही वहाँ उपस्थित सभी लोग विस्मित होकर जीवात्मा की ज्ञान से परिपूर्ण बातें सुन रहे थे। इसे सुनकर उन लोगों का बाकी शोक भी नष्ट हो गया।

आगे चलकर राजा चित्रकेतु एक महान भगवद्भक्त हुए।

□ □ □

श्रीमद्भागवत में वर्णित इस प्रसंग ने समूचे सांसारिक सम्बन्धों का खोखलापन स्पष्ट किया है, चाहे वे कितने ही घनिष्ट क्यों न हों। 'मैं अमुक शरीर हूँ'—यह बुद्धि रखकर हम अन्य शरीरों से यह 'मेरा पुत्र', यह 'मेरी पत्नी', यह 'मेरी माता', ये 'मेरे पिता'—फिर ये 'मेरी चचेरी मौसी के पति की बड़ी साली'—ऐसे अत्यन्त जटिल रिश्ते-नातों तक कितने ही सम्बन्ध स्थापित करते रहते है। 'मैं' को केन्द्रित करके बुना हुआ यह 'मेरा' का जाल इतना मोहक एवं लुभावना रहता है कि भविष्य में वह भयंकर दुःख तथा बन्धन की ही सृष्टि करेगा, यह जानते हुए भी हमारा 'मैं' उसी में डूबा रहना पसन्द करता है। इस रेशम के बन्धन को तोड़ने की क्षमता रहते हुए भी, उसका मोह इतना जबरदस्त रहता है कि वैसी इच्छा उसे होती ही नहीं। बंगाली सन्त-कवि रामप्रसाद का एक सुन्दर भजन है, जिसका भावार्थ है—

रे मन, तू जरा सोचकर तो देख। इस जगत में कोई किसी का नहीं है। यहाँ तू व्यर्थ ही मारा मारा फिरता है। इस ('मैं-मेरा' के) मायाजाल में फँसकर उस बराभयकरा काली-माँ को भूल मत जाना। जिनके लिए चिन्ता करके तू मरा जा रहा है, वे क्या तेरे साथ जानेवाले हैं? (जन्म-जन्मान्तर की साथी लगनेवाली) तेरी प्रियतमा भी, अमंगल के भय से उस जगह को शुद्ध करवा लेगी। दो-तीन दिनों के लिए तुझे सभी परिवार का मालिक मानेंगे, परन्तु कालाकाल के मालिक के आने पर वे लोग तेरा तत्काल त्याग कर देंगे। रामप्रसाद कहते हैं कि जब यमराज तेरे केश पकड़ कर खींचने लगेगा, तब काली का नाम लेकर पुकारना, तब फिर काल भी तुम्हारा भला क्या कर सकेगा?

□ □ □

इन मायिक सम्बन्धों की निस्सारता गले से उतर गयी, तो भी उनका संस्कार इतना दृढ़ होता है कि 'ये सारे सम्बन्ध अनित्य हैं'—इस प्रकार का केवल विचार ही उनसे मुक्ति दिलाने के लिए पर्याप्त नहीं होता। इसीलिए भक्तिशास्त्र उसके साथ एक और उपाय जोड़ देने को कहते हैं। वह उपाय है—इन सम्बन्धों को परमेश्वर पर आरोपित करना। वे ही हम सबकी सच्ची माता हैं, सचमुच के पिता, पुत्र, भाई, बहन, सखा, सब कुछ हैं। उन्हीं का सच्चा मातृत्व, पितृत्व, पुत्रत्व आदि जगत की विभिन्न अनित्य वस्तुओं में प्रतिबिम्बित होने के कारण हमें किसी शरीर में मातृत्व, तो किसी अन्य में पितृत्व अथवा पुत्रत्व का आभास होता है। और जिस तरह देखने वालों के स्थानों में भेद होने के कारण एक ही आइने में प्रत्येक को भिन्न-भिन्न प्रतिबिम्ब दीख पड़ते हैं, उसी तरह एक ही शरीर किसी को पितावत, तो किसी दूसरे को पुत्रवत और किसी अन्य को सखावत प्रतीत होता है। इसीलिए जिसके सत्यत्व के कारण ये भ्रामक सम्बन्ध सत्य प्रतीत होते हैं, उन परमेश्वर से ही ये सम्बन्ध स्थापित किये जायँ, तो वे बन्धनों से मुक्ति दिला देते हैं।

मनुष्य इसी प्रकार अपने सांसारिक सम्बन्धों को नयी तथा मुक्तिदायी दिशा दे सकें, इसीलिए वे करुणाधन परमात्मा ही बीच-बीच में मानव रूप धारण करके जगत में आते रहते हैं। सर्वातीत, सर्वगत अमूर्त परमात्मा को माता-पिता आदि मानना भला कैसे सम्भव होगा? उसी प्रकार जैसे भगवान श्रीकृष्ण को किसी ने पिता, किसी ने सखा, किसी ने पुत्र, किसी ने प्रियतम आदि मानकर इन नाना भावों द्वारा उनकी उपासना करके मुक्ति प्राप्त कर ली है।

भगवान श्रीरामकृष्ण की सहधर्मिणी श्रीसारदादेवी के रूप में परमात्मा का मातृत्व ही मूर्तिमान हुआ था। हजारों भक्त उन्हें 'माँ' कहकर सम्बोधित करते थे। इतना ही नहीं, उनसे प्रवाहित होनेवाले मातृत्व के स्रोत में अवगाहन करके असंख्य लोग अपने मायिक सम्बन्धों से मुक्ति के मार्ग में अग्रसर हुए हैं। उनके इस अनोखे मातृत्व का स्वरूप एक भक्त से हुए उनके निम्नलिखित वार्तालाप से स्पष्ट होता है—

भक्त—आप किस प्रकार की माता हैं?

श्रीसारदादेवी—मैं तुम्हारी सचमुच की माँ हूँ। गुरुपत्नी के नाते से नहीं, मानी हुई नहीं, केवल कहने के लिए नहीं—मैं सचमुच की माँ हूँ, मैं सबकी माँ हूँ।

सागर जिस तरह समस्त तरंगों की जननी है—सभी तरंगों का निर्माण उसी से होता है और उसी में उनका विलय भी होता है—उसी तरह परमात्मा ही सब जीवों की यथार्थ माता, पिता, पुत्र आदि सब कुछ हैं। बाकी सभी माता-पिता भाई-बहन आदि केवल माने हुए—काल्पनिक, भ्रामक सम्बन्ध नहीं तो और क्या हैं?

प्रेरक-प्रसंग

सन्त सालबेग

प्रतिवर्ष पुरी में होनेवाली जगन्नाथजी की महान रथयात्रा १७वीं शताब्दी के एक मुस्लिम सन्त-कवि सालबेग की छोटी-सी समाधि के पास थोड़ी देर ठहर कर ही आगे बढ़ती है। यह असामान्य परम्परा प्रभु जगन्नाथ के इन परम भक्त के जीवन की एक रोचक घटना से जुड़ी हुई है।

एक मुगल सामन्त थे तथा उनकी एक ब्राह्मण पत्नी की सन्तान के रूप में सन् १५९२ ई० में उड़ीसा में सालबेग का जन्म हुआ। कहते हैं कि अफगानों से लड़ते समय वह बुरी तरह घायल हो गया था और भगवान श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हो उसके घाव चामत्कारिक रूप से तत्काल भर गये। श्रीकृष्ण के ही जगन्नाथ के रूप में विराजित होने के कारण, उनके प्रति कृतज्ञ भाव से सालबेग ने उनके मन्दिर के पास ही एक मठ बनवाया और जगन्नाथ, श्रीकृष्ण तथा अन्य वैष्णव देवताओं की स्तुति के रूप में भजन बनाते हुए अपना बाकी जीवन वहीं बिता दिया। वस्तुत: सालबेग के उड़िया भजनों की गणना श्रेष्ठतम वैष्णव पदों में होती है।

हिन्दू न होने के कारण सालबेग को जगन्नाथजी के मन्दिर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। इस कारण वे केवल वार्षिक रथयात्रा के अवसर पर ही प्रभु के दर्शन कर पाते थे। एक बार जब सालबेग अपनी बृन्दावन की तीर्थयात्रा से लौटने के रास्ते में ही थे, कि रथयात्रा आरम्भ हो गयी। सालबेग ने प्रभु से बड़ी आन्तरिक प्रार्थना की कि वे उन्हें अपने वार्षिक दर्शन से बंचित न करें, परन्तु रथ जब उनके मठ तक पहुँचा, तब तक वे पहुँच नहीं सके थे।

कहते हैं कि तब प्रभु ने सालबेग के लिए एक और चमत्कार किया—सैकड़ों हाथियों तथा हजारों लोगों ने मिलकर रथ को खींचने का बहुत प्रयास किया, परन्तु वे उसे तिल भर भी नहीं हिला सके। परन्तु जब सालदेग आ पहुँचे और उन्होंने रथ की रस्सी पकड़कर खींची, तभी यात्रा आगे बढ़ सकी। और इस कारण सालबेग के देहावसान के बाद भी प्रतिबर्ष जगन्नाथजीं का रथ उनकी समाधि के पास ठहर कर ही आगे बढ़ता रहा है।

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर
छपरा-८४१ ३०१ (बिहार)

दूरभाष : 06152-22639

स्वामी विवेकानन्द प्रतिमा-स्थापन

नम्र निवेदन

प्रिय महोदय/महोदया,

आपको यह सूचित करते हुए हमें परम प्रसन्नता हो रही है कि पश्चिमी जगत में भारतीय धर्म और अध्यात्म की विजय पताका लहराने के उपरान्त दिग्विजयी **स्वामी विवेकानन्द** के भारत प्रत्यागमन के शताब्दी-महोत्सव वर्ष की स्मृति में स्वामी विवेकानन्द की आदमकद कांस्य-प्रतिमा की स्थापना करने का शुभ संकल्प छपरा के नागरिकों ने लिया है। छपरा स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) के जन्म-जिला का मुख्यालय है।

मनुष्य-निर्माण, चरित्रगठन, सामाजिक न्याय, सर्वधर्म समभाव एवं भारत के पुनर्निर्माण के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा एक विद्युत-तरंग का कार्य करेगी एवं वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणा का प्रकाशपुंज सिद्ध होगी—यह निर्विवाद है।

अतएव, आपसे हमारा नम्र निवेदन है कि इस याज्ञिक कार्य में उदारतापूर्वक दान देकर हमारे विनम्र प्रयास का सहभागी बनने की कृपा करें। इस महनीय कार्य में बड़े से बड़ा दान भी अल्प है और छोटे से छोटा दान भी महत्तम है।

स्वामीजी की कृपा आप पर निरन्तर बरसे—यही प्रार्थना है।

प्रेम और शुभकामनाओं सहित—

स्वामी विवेकानन्द चरणाश्रित
आपका
(डॉ० केदारनाथ लाभ)
सचिव

चेक या ड्राफ्ट रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा (बिहार) के नाम से भेजने की कृपा करें। नकद रुपये मनीआर्डर से भेजे जा सकते हैं।

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शो पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण संस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक

स्वामी सुवीरानन्द

सचिव

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।

2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।

डाक पंजीयित संख्या—सी. एच. पी. १४-८३

श्रद्धा

मनुष्य में धर्म और परमेश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा होनी चाहिये। जब तक उसमें ऐसी श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती, तब तक वह 'ज्ञानी' होने की सम्यक् आकांक्षा नहीं कर सकता। एक महापुरुष ने एक समय मुझसे कहा कि दो करोड़ मनुष्यों में भी एक ऐसा मनुष्य इस दुनिया में नहीं है जो ईश्वर में सम्यक् विश्वास करता हो। मैंने पूछा, "यह कैसे?" तो वे बोले—"मान लो, इस कमरे में चोर घुस आया और उसे पता लग गया कि दूसरे कमरे में सोने का ढेर लगा है, और दोनों कमरे को अलग करने वाली दीवाल भी बहुत पतली है तो उस चोर के मन की हालत क्या होगी? मैंने उत्तर दिया—"उसे नींद न आयेगी, उसका मन सोना पाने की तरकीबों में ही लगा रहेगा। उसे और कुछ भी न सूझेगा।" यह सुनकर वे बोले—तो फिर तुम्हीं बताओ कि क्या यह सम्भव है कि मनुष्य ईश्वर में विश्वास करे और उसे पाने के लिये वह पागल न हो। यदि मनुष्य सचमुच यह विश्वास करे कि ईश्वर असीम आनन्द की खान है और वह उस खान तक पहुँच भी सकता है। तो क्या वहाँ पहुँचने के लिये वह पागल न हो जायेगा? ईश्वर में अटूट विश्वास और फलस्वरूप उसे पाने की तीव्र उत्सुकता का ही नाम है 'श्रद्धा।'

सच्चा योगी

यदि तुम योगी होना चाहते हो, तो तुम्हें स्वतन्त्र होना पड़ेगा और अपने आप को ऐसे वातावरण में रखना होगा जहाँ तुम सर्व चिन्ताओं से मुक्त होकर अकेले रह सकते हो। जो आराममय और विलास-मय जीवन की इच्छा रखते हुए आत्मानुमति की चाह रखता है वह मूर्ख के समान है, जिसने नदी पार करने के लिए एक मगर को लट्ठा समझकर पकड़ लिया था। 'अरे' तुम लोग पहले ईश्वर के राज्य और धर्म की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करो और शेष ये सब वस्तुएँ तुम्हारे पास अपने आप ही आ जायेंगी। उसी के पास सभी वस्तुएँ आती हैं जो किसी को भी परवाह न करता। भाग्य उस चपला स्त्री के समान है; जो उसे चाहता है उसकी वह परवाह ही नहीं करती; पर जो व्यक्ति उसकी परवाह नहीं करता, उसके चरणों पर वह लोटती रहती है। जिसे धन की कोई कामना नहीं लक्ष्मी उसी के घर छप्पर फाड़ कर आती है इसी प्रकार, नाम-यश अयाचक के पास ढेर-के-ढेर में आता है, यहाँ तक कि यह सब उसके लिये एक कष्ट प्रद बोझ हो जाता है। सदैव स्वामी के पास ही यह सब आता है। गुलाम को कभी कुछ नहीं मिलता। स्वामी तो वह है, जो बिना उन सब के रह सके, जिसका जीवन संसार की क्षुद्र, सार हीन वस्तुओं पर अवलंबित नहीं रहता। एक आदर्श के लिये—और केवल उसी एक आदर्श के लिए जीवित रहो। उस आदर्श को इतना प्रबल, इतना विशाल एवं महान होने दो, जिससे मन के अन्दर और कुछ भी न रहने पाये, मन में अन्य किसी के लिए भी स्थान न रहे, अन्य किसी विषय पर सोचने के लिए समय ही न रहे।

—स्वामी विवेकानन्द

श्रीमती गंगादेवी द्वारा रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर छपरा से प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स सैदपुर, पटना-८०० ००४ में मुद्रित।